195

॥ श्रीहरिः ॥

भगवान्‌पर विश्वास

[प्रेमी भक्त भाई लारेंसके सम्भाषण और पत्र]

त्वमेव माता च पिता त्वमेव
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव
त्वमेव सर्वं मम देवदेव॥

सम्पादक

हनुमानप्रसाद पोद्दार

[195] भ० वि० 1/A

परिचय

भगवद्भक्त भाई लारेंसका जन्म सन् १६१० ई० में फ्रांसके लोरेन प्रान्तमें एक अशिक्षित और निर्धन परिवारमें हुआ था। इनका नाम निकोलस हरमन था। भगवान्‌के प्रति अटूट श्रद्धा, भक्ति, रति और विश्वासके फलस्वरूप इनका जीवन उत्तरोत्तर उन्नत होता गया, अन्तमें ये परम सन्तकी कोटिमें पहुँच गये एवं भाई लारेंसके नामसे प्रख्यात हुए।

पहले ये एक साधारण सिपाही रहे, पीछे महाशय फोबर्टके यहाँ इन्होंने दरवानी की और अन्तमें पंद्रह वर्षोंतक पाचक (रसोइये) का काम किया। अठारह वर्षकी अवस्थामें ही इनपर भगवत्कृपा हो गयी थी। तबसे इनका जीवन एकमात्र भगवत्-प्रेमकी समाधिमें ही बीता।

इस पुस्तिकामें इनके चार सम्भाषण और पंद्रह पत्रोंका भाषानुवाद प्रकाशित किया जा रहा है। यह पुस्तिका अमेरिकाके 'यंग मेन्स क्रिश्चियन असोसियेसन' के द्वारा प्रकाशित The Practice of Precent of Cod पुस्तिकाके आधारपर लिखी गयी है। अंग्रेजी पुस्तिका एक फ्रेंच पुस्तकका अनुवाद है। मूल पुस्तकमें लेखकका नाम नहीं दिया गया है। इस हिन्दी अनुवादके लेखक हमारे प्रिय भाई बाबा गिरधारीदासजी हैं। आशा है, पाठक इस छोटी-सी, परन्तु महत्त्वपूर्ण पुस्तिकासे विशेष लाभ उठावेंगे।

गोरखपुर
गुरुपूर्णिमा २००७ वि०

हनुमानप्रसाद पोद्दार
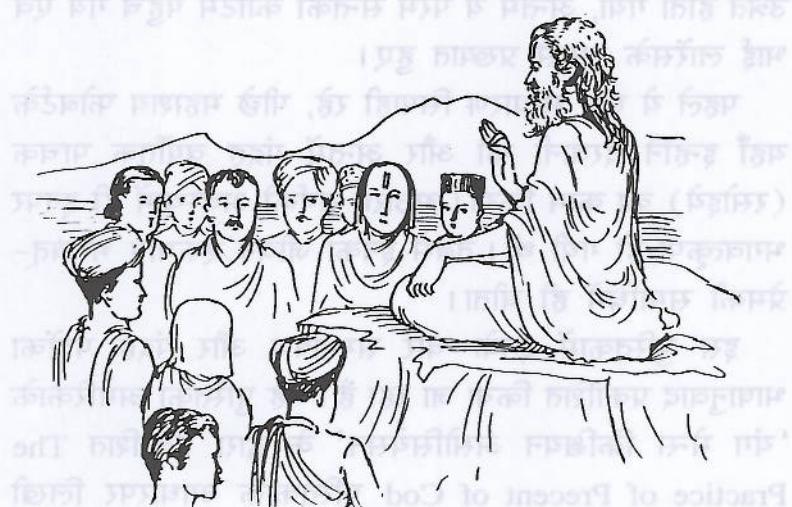
॥ श्रीहरिः॥

भगवान्पर विश्वास

[प्रेमी भक्त भाई लारेंसके सम्भाषण और पत्र]

सम्भाषण

(१)

भाई लारेंससे मेरी प्रथम भेंट तीन अगस्त सन् १६६६ को हुई थी। उन्होंने मुझे बताया—अठारह वर्षकी अवस्थामें मुझपर भगवान्की एक अनोखी कृपा हुई, जिससे मेरी जीवन-प्रणाली ही बदल गयी और मैं भगवद्विश्वासी बन गया।

शिशिर-कालमें मैंने एक वृक्षको पत्रहीन देखा; देखते ही मेरे मनमें विचार उठा कि वह नंगा वृक्ष थोड़े ही कालमें नयी हरी-हरी पत्तियोंसे आवृत हो जायगा। तदुपरान्त पुष्पों और फलोंके आविर्भावसे उसकी शोभा और भी मनोरम हो जायगी। इसी विचारधारामें मुझको भगवान्की कृपा एवं विभवकी एक अनूठी झाँकी प्राप्त हुई, जो सदाके लिये मेरे अन्तस्तलमें स्थिर हो गयी और उसके परिणामस्वरूप मेरे समस्त सांसारिक बन्धन एकदम ढीले हो गये एवं मेरे अन्तरमें भगवत्प्रेमकी जो ज्योति उत्पन्न हुई, उसका प्रकाश उसी समय इतना तीव्र था कि चालीस वर्षसे अधिक बीत जानेपर भी मैं यह नहीं बता सकता कि उस प्रकाशमें और अभिवृद्धि हुई है।

मैं एक कोषाध्यक्ष महाशय फोबर्ट (M-Fieubert) का

अनुचर था। अपने कार्यमें मैं बड़ा अकुशल समझा जाता था; क्योंकि मुझसे प्रायः सभी वस्तुएँ टूट जाया करती थीं।

मेरी इच्छा हुई कि मैं किसी मठ (Monastery) में ले लिया जाऊँ। यह विचार इसलिये उठा कि वहाँ रहनेसे मुझे भूलों और अपराधोंके बन जानेपर दण्ड मिलेगा और इस प्रकार मैं अपने जीवनको लौकिक सुखोंसहित भगवत्-मार्गपर बलिदान कर दूँगा; परंतु भगवान्‌ने मेरी वह अभिलाषा पूरी न की; क्योंकि मठमें रहनेसे मुझे जो दण्डभोग प्राप्त हुआ, वह मेरे मनके सन्तुलनको किसी प्रकार प्रभावित न कर सका।

भगवान्‌के साथ निरन्तर वार्तालापके अभ्यासद्वारा अपनेको भगवत्सान्निध्यके भावमें भलीभाँति स्थिर कर लेना चाहिये। भगवान्‌के साथ (मानसिक) वार्तालापको छोड़कर तुच्छ एवं मूर्खताभरी बातोंको सोचना लज्जाकी बात है।

हमें अपने आत्माको भगवत्सम्बन्धी ऊँची भावनाओंके आहारद्वारा पुष्ट करना चाहिये। इससे हमें भगवद्भक्तिके परमानन्दका प्रसाद प्राप्त होगा।

हमें चाहिये कि अपने भगवद्विश्वासको सजीव बनायें। भगवान्‌में हमारा विश्वास कितना कम है, यही तो शोचनीय विषय है। भगवद्विश्वासको अपने आचरणका आधारस्तम्भ न बनाकर लोग मनोविनोदके लिये प्रतिदिन बदलनेवाले तुच्छ साधनोंका आश्रय लेते हैं। भगवद्विश्वासकी साधना ही भगवान्‌की सच्ची आराधना है और यही हमें पूर्णताके अति निकट ले जानेके लिये पर्याप्त है।

लौकिक एवं आध्यात्मिक क्षेत्रमें हमें कुछ न रखकर

सर्वस्व भगवान्‌को समर्पितकर देना चाहिये और उनके प्रत्येक विधानमें सन्तोषका अनुभव करना चाहिये, चाहे वह विधान सुखके रूपमें प्रकट हो अथवा दु:खके। आत्मसमर्पण हो जानेपर विधानके सभी रूप हमारे लिये समान हो जायँगे। प्रार्थनामें जब हमें नीरसता, भावशून्यता अथवा शिथिलताका अनुभव हो, उस समय हमें भगवद्विश्वासकी आवश्यकता होती है, क्योंकि भगवद्विश्वासके अनुपातसे ही भगवान् हमारे प्रेमकी परीक्षा लेते हैं। यह वही समय है जब हम समर्पणके सुन्दर एवं सफल कार्य कर सकते हैं। ऐसा एक भी कार्य बन जानेपर वह हमारी आध्यात्मिक उन्नतिको प्राय: अग्रसर करनेमें सहायक होता है।

जिन दु:खों और पापोंके बारेमें मैं नित्यप्रति इस संसारमें सुनता था, उनपर मुझको विस्मय नहीं होता था, बल्कि आश्चर्यचकित हो मैं यह अनुभव करता था कि द्वेषसे प्रेरित होकर लोग जितने पाप कर सकते हैं, उनकी अपेक्षा संसारमें दु:ख और पाप कम हैं। अपनी ओरसे ऐसे पापियोंके लिये मैं प्रार्थना करता था, परंतु यह समझकर कि भगवान् जब चाहेंगे, इन कुकृत्योंको दूर करनेका उपाय स्वयं कर लेंगे, मैंने इस सम्बन्धमें फिर सोचनेका कभी भी विचार भी नहीं किया।

'जिस कोटिका समर्पण भगवान् हमसे चाहते हैं, उसको प्राप्त करनेके लिये हमें आध्यात्मिक और भौतिक जगत्‌से मिली हुई सभी भावनाओंका ध्यानपूर्वक निरीक्षण करते रहना चाहिये। जो भगवान्‌की सेवा सच्चे मनसे करनेको आतुर हैं, भगवान् उनको वह प्रकाश प्रदान करेंगे जिसके

आलोकमें वे अपनी भावनाओंकी ठीक-ठीक परख कर सकेंगे।'

चलते समय उन्होंने फिर कहा—'यदि यही अर्थात् भगवान्‌की निष्कपट सेवा ही आपका उद्देश्य हो तो आप बिना इस डरके कि मुझको कुछ कष्ट होगा, जितनी बार चाहें मेरे पास निःसंकोच आ सकते हैं, परन्तु यदि भगवत्सेवा आपका उद्देश्य नहीं है तो आप फिर मेरे पास न आवें।

(२)

भाई लारेंस बोले—'स्वार्थरहित हो मैंने भगवत्प्रेमको ही अपने जीवनका ध्रुवतारा बनाया और मैंने निश्चय किया कि भगवत्प्रेममें ही मेरे प्रत्येक कर्मका पर्यवसान होगा, अपनी इस साधन-पद्धतिसे मुझे यथेष्ट सन्तोषका अनुभव भी हुआ। भगवत्प्रेम एवं भगवत्प्राप्तिके लिये मैं छोटे-से-छोटा कार्य करनेमें प्रसन्न होता और बदलेमें किसी प्रकारके पुरस्कार पानेकी मुझे कभी इच्छा नहीं हुई।'

मैं कहीं नरकगामी न बनूँ इस विचारने मुझे काफी समयतक मानसिक वेदनाका भोग कराया। यह विचार मेरे मनमें इतना घर कर गया कि उस समय यदि समस्त संसारके लोग मुझे इसके विपरीत विश्वास या आश्वासन दिलानेका प्रयत्न करते, तो वे असफल ही सिद्ध होते। परन्तु इसका समाधान मैंने स्वयं ही युक्तियोंद्वारा इस प्रकार किया—'धार्मिक जीवनमें मैं जो प्रवृत्त हुआ हूँ वह एकमात्र भगवत्प्रेमके कारण, और मैंने जो कुछ भी प्रयत्न किया है, इसी उद्देश्यके लिये; इसके परिणामस्वरूप जैसी भी अब

मेरी गति हो—कल्याण हो या अकल्याण—मैं केवल भगवत्प्रीत्यर्थ ही एकनिष्ठ हो सदा कर्म करूँगा। मेरे लिये कम-से-कम इतनी सन्तोषकी बात होगी कि मृत्युपर्यन्त मैं जो कुछ भी कर चुका हूँगा, वह होगा केवल भगवत्प्रीत्यर्थ ही। उपर्युक्त मानसिक वेदनासे मुझे लगातार चार वर्षतक बहुत कष्ट हुआ, अन्तमें मुझे अनुभव हुआ कि यह कष्ट तो भगवद्विश्वासकी कमीके कारण ही था। उसके अनन्तर मेरा सम्पूर्ण जीवन भगवत्प्रेमके साम्राज्यमें पूर्ण स्वतन्त्रता और अखण्ड प्रसन्नतासे ओतप्रोत रहा। मैंने अपनी त्रुटियों एवं कमजोरियोंको निष्कपट भावसे अपने और भगवान्के समक्ष इसलिये रख छोड़ा था कि भगवान् जान जायँ कि मैं उनके अनुग्रहका पात्र होनेयोग्य नहीं हूँ। परन्तु इसपर भी अकारण हितू भगवान्ने अपनी अनवरत कृपादृष्टिसे मुझे सदैव आवृत ही रखा!

भगवान्के साथ निरन्तर (मानसिक) वार्तालाप एवं उनके निमित्त सब कर्म करनेका स्वभाव बनानेके लिये हमें आरम्भकालमें कुछ उद्योग तो करना ही होगा। साधनामें जुट जानेपर हमें अनुभव होगा और थोड़ी-सी सावधानी रखनेपर हमारे हृदयमें भगवत्प्रेमकी एक तरंग उठेगी, जो बिना किसी बाधाके हमारे साधनपथको प्रशस्त बनाती जायगी।

सुख-शान्तिके रूपमें भगवान्का जो विधान अवतरित हुआ उसका उपयोग करनेके अनन्तर मुझे लगा कि अब मेरी बारी भगवान्के दुःख-क्लेशरूपी प्रसादको प्राप्त करनेकी है। इस प्रकारसे मेरे हृदयमें तनिक भी चिन्ता नहीं हुई; क्योंकि मैं जानता था कि सब प्रकारसे मैं भगवदधीन हूँ।

जो भगवान् हमारे लिये दु:ख-क्लेशका विधान रचते हैं, वे उसको सहन करनेकी शक्तिसे भी हमें कभी वञ्चित नहीं करते।

जब कभी मुझे सेवाका सुन्दर अवसर प्राप्त होता, मैं भगवान्‌से यही प्रार्थना करता कि 'हे भगवन्! आपकी कृपा बिना मैं इसे कदापि नहीं कर सकूँगा।' इसका फल यह होता कि भगवान् मुझे शक्तिके विपुल दानसे अनुगृहीत करते।

जब कभी मैं कर्तव्यच्युत होता तो बिना किसी आपत्तिके मैं भगवान्‌के समक्ष अपने अपराधको स्वीकार करता और आर्त होकर पुकार उठता—'नाथ! यदि इस प्रकार अकेले मेरे बलबुद्धिके भरोसे आप मुझे छोड़ देंगे तो सिवा अपराधके मुझसे और कुछ न बनेगा। हे शरणागतवत्सल! आप ही मुझे अधोगतिसे बचायें और मेरे अपराधोंका परिमार्जन करें।' इस आतुरताभरी प्रार्थनाके अनन्तर मैं अपूर्व शान्तिका अनुभव करता।

जीवनके प्रत्येक क्षेत्रमें विशुद्धभावसे भगवान्‌को अपने अत्यन्त समीप समझकर नितान्त सरलता एवं सचाईके साथ अपने हृदयकी भावनाओंको उनके सामने रखते हुए जो भी कर्तव्यकर्म हमारे लिये प्रस्तुत हो, प्रसन्नतापूर्वक करें और उसकी सफलताके लिये भगवान्‌से ही अनुनय-विनय भी करें। मैं अपने अनुभवके बलपर कहता हूँ कि सफलमनोरथ होनेमें हमें भगवान् कभी निराश नहीं करते।

कुछ समय पूर्वकी बात है, संघके लिये खाद्य सामग्री खरीदनेको मुझे बरगंडी (Burgundy) भेजा गया। यह कार्य

मेरे लिये बहुत अरुचिकर था; क्योंकि ऐसा धन्धा करना मेरे स्वभावमें न था; और दूसरे पंगु होनेके कारण नदीके तटपर नौकातक पहुँचनेमें मैं असमर्थ था, पीपोंके ऊपरसे लुढ़ककर ही किसी प्रकार वहाँ पहुँच सकता था। तथापि नौकातक पहुँचने एवं रसद खरीदनेके विषयमें मुझे कुछ भी घबराहट नहीं हुई, मैंने केवल भगवान्‌से यह कहा—'जिस कामके लिये मैं भेजा जा रहा हूँ, वह तो आपका ही है।' मुझे स्मरण है, वह काम बहुत ही सुन्दर ढंगसे सम्पन्न हुआ था, ऐसे ही कामके लिये एक बार पहले भी मुझे आवरगनी (Auvergne) भेजा गया था और इसी प्रकार वह काम भी कल्पनातीत ढंगसे अपने-आप निपट गया था।

रसोईके काममें स्वभावसे ही मेरी अभिरुचि न होनेपर भी मैंने भगवत्प्रीत्यर्थ पाकशालाका प्रत्येक कार्य करनेके लिये अपनेको अभ्यस्त बनाया। मेरा मन प्रार्थनामें इतना रम गया कि कार्यके प्रत्येक अवसरपर मैं भगवत्कृपाकी ही ओर निहारता और मेरे सब काम सुचारुरूपसे सम्पन्न होते। इस प्रकार पन्द्रह वर्षतक मैंने रसोइयेका काम सुगमतापूर्वक किया।

पन्द्रह वर्षकी सुदीर्घ अवधि समाप्तकर मैं फिर जिस कामपर लगा, उससे पर्याप्त सन्तोष एवं प्रसन्नता रही। आसक्ति न होनेके कारण मैं उस कामको वैसे ही सुगमतासे छोड़ सकता था जैसे कि मैंने रसोइयेका काम छोड़ा था; क्योंकि छोटे-से-छोटा एवं बड़े-से-बड़ा काम मैं एकमात्र भगवत्प्रसन्नताके लिये ही करता, इससे मेरा स्वभाव ऐसा बन गया कि प्रत्येक अवस्थामें मुझे भगवत्कृपाकी मन-

मोहिनी झाँकी दीखती और मैं आनन्दोल्लासका अनुभव करता रहता।

प्रार्थनाके निर्दिष्ट और अन्य समयमें मेरे लिये कोई अन्तर न रहा। परन्तु गुरुजनोंकी आज्ञा पालन करनेके लिये ही मैं निर्दिष्ट समयपर एकान्तमें प्रार्थना करनेको चला जाता। प्रार्थनाके लिये न तो मुझे उनसे आज्ञा लेनेकी आवश्यकता थी और न किसी एकान्तकी। बड़े-से-बड़ा काम भी मेरे मनको प्रभु-प्रार्थनासे कभी च्युत नहीं कर सकता।

इस बातसे मैं सदैव सचेत रहा हूँ कि प्रत्येक अवस्था एवं कार्यमें भगवान् ही मेरे एकमात्र प्रेमास्पद हैं। मुझे इसके लिये कभी किसी पथ-प्रदर्शककी आवश्यकता नहीं हुई, क्योंकि मैं भगवत्प्रेमके साधन-पथपर दृढ़तापूर्वक संलग्न रहा हूँ; परन्तु मुझे आवश्यकता थी एक धर्मगुरुकी, जिसके सामने मैं अपने समस्त अपराधोंको प्रकट कर सकता और इस प्रकार पापमुक्त होता। अपने अपराधोंके प्रति मैं सदैव जागरूक रहा हूँ, परन्तु उनके कारण मैं कभी हतोत्साह नहीं हुआ। भगवान्‌के सामने मैं अपने अपराधोंको निष्कपट हृदयसे स्वीकार करता, परंतु उनको उनसे क्षमा करवाऊँ, ऐसी याचना मैंने कभी नहीं की। भगवान्‌के सम्मुख अपने अपराध स्वीकार करनेके अनन्तर मैं शान्तिपूर्वक भगवत्प्रेम एवं भक्तिके पथपर पूर्वकी भाँति आरूढ़ रहा।

जीवनमें ऐसे क्षण भी उपस्थित हुए जब कि मुझे मानसिक वेदनाका सामना करना पड़ा; पर उपचारके लिये मुझे कभी किसी मनुष्यसे परामर्श लेनेकी आवश्यकता नहीं हुई; क्योंकि भगवद्विश्वासकी ज्योति मुझे भगवान्‌के सान्निध्यका

सदा बोध कराती रहती और मैं उनके लिये प्रत्येक कार्य करता हुआ सन्तुष्ट रहता। मेरे अमुक कार्यसे क्या फल होगा, इसकी चिन्ता न करते हुए मैं सब काम भगवत्प्रीत्यर्थ ही करता।

कहीं ये विचार ही हमारे अनिष्टका कारण न बन जायँ, कहीं कोई आपत्ति न उठ खड़ी हो—ऐसी आशङ्काओंका ज्यों ही हमें पता लगे कि वे हमारे आत्मकल्याण एवं भगवद्विश्वासके मार्गमें विघ्न उपस्थित करेंगी, उन्हें उसी क्षण कुचल डालना चाहिये और भगवान्‌के साथ वार्तालापके अभ्यासमें पूर्वकी भाँति स्थिर हो जाना चाहिये।

प्रारम्भिक अवस्थामें प्रार्थनाके लिये जो समय निर्धारित था, उसीमें मैं प्राय: अपना समय बिता देता। साधन करते हुए मुझे अनुभव हुआ कि कुछ समयतक तो मेरा मन एकाग्र होता है, परन्तु फिर विशृङ्खल होकर इधर-उधर भटकने लगता है। इस प्रकार मैं किसी निश्चित साधनद्वारा मनोनिग्रहके अभ्यासको नियमानुसार न चला सका, जैसा कि प्राय: कुछ लोग करते हैं। हाँ, कुछ समयतक तो मेरा भगवत्-ध्यान बनता; परन्तु तदुपरान्त वह कैसे अचानक छूट जाता—इसका मुझे कुछ भी पता न चला।

बाह्य इन्द्रियोंका हठपूर्वक निग्रह आदि साधन तो व्यर्थ ही कष्ट देनेवाले हैं। साधनाकी उपयोगिता तो एकमात्र प्रेमयोगके द्वारा भगवत्प्राप्तिमें है, इसपर मैंने ध्यानपूर्वक विचार किया और मुझे अनुभव हुआ कि इस प्रेमयोग एवं भगवान्‌में कर्मसंन्यासकी अविरल साधनासे ही हम अति अल्पकालमें भगवान्‌का साक्षात्कार कर सकते हैं।

बुद्धि और आत्मशक्तिद्वारा होनेवाली क्रियाओंमें हमें एक विशेष अन्तर देखना चाहिये। आत्मशक्तिसे सम्पन्न होनेवाली क्रियाओंके सामने बुद्धिद्वारा होनेवाली क्रियाओंका कुछ भी महत्त्व नहीं। हमारे लिये यही एक कर्तव्य है कि हम भगवान्‌से प्रेम करें और उन्हींमें ही रमण करें।

भगवत्प्रेमसे रिक्त निग्रहकरणके जितने भी साधन सम्भव हो सकते हैं, यदि उनको जुटा लें तो भी उनसे हमारे एक भी पापका नाश नहीं हो सकता। सम्पूर्ण हृदययोगके द्वारा भगवान्‌से प्रेम करनेपर हमारे पापोंका स्वतः मार्जन हो जाता है। उसके लिये चिन्ताकी कहीं गुँजाइश नहीं रह जाती। ऐसा लगता है, मानो भगवान्‌ने बड़े-से-बड़े पापियोंपर महान्-से-महान् अनुग्रह कर अपनी दयाका एक अनुपम कीर्तिस्तम्भ खड़ा कर दिया है।

बड़े-से-बड़े क्लेशों और महान्-से-महान् सुखोंका आध्यात्मिक जगत्‌में जो मुझे अनुभव हुआ, उसके सामने भौतिक जगत्‌के दुःख-सुख कुछ भी नहीं। मैं तो भगवान्‌से यही माँगता हूँ कि कहीं मुझसे उनका अपराध न बन जाय; इसके सिवा न तो मुझे किसी बातकी परवा है और न किसीका भय ही।

जब कभी मैं कर्तव्यच्युत होता तो बिना किसी झिझकके अपने अपराधको यह कहते हुए स्वीकार करता कि 'हे भगवन्! ऐसा करना तो मेरे स्वभावमें ही है, यदि आप मुझे स्वतन्त्र छोड़ देंगे तो मुझसे निश्चय ही अपराध बनेगा।' और यदि कर्तव्यपालनमें सफल होता तो भगवान्‌को धन्यवाद देते हुए यह कहता कि 'जिस शक्तिसे मैंने कर्तव्यपालन किया

है, वह तो आपसे ही मुझे प्राप्त हुई है।'

(३)

भाई लारेंसने कहा—'भगवद्विश्वासके प्रति मेरी जो महत्ताकी भावना एवं आदरबुद्धि है, वही मेरे आध्यात्मिक जीवनका मूल आधार है। इस तथ्यको एक बार हृदयङ्गम कर लेनेपर मुझे केवल इसी बातका सदा ध्यान रहा है कि मेरे सब काम भगवत्प्रीत्यर्थ हों और इससे इतर विचारोंका मेरे मनमें कहीं कोई स्थान न रहे। प्रथम जब कभी कुछ क्षणोंके लिये मेरा भगवच्चिन्तन छूट जाता तो सावधान होनेपर मुझे इसके लिये विशेष घबराहट न होती, क्योंकि भगवद्विस्मृतिजनित दुःखका अनुभव कर मैं अपने इस दैन्यको भगवान्‌के सम्मुख स्वीकार करके और भी अधिक विश्वासके साथ उनकी ओर प्रवृत्त होता।

हमारा अडिग भगवद्विश्वास भगवान्‌के पूजनकी सर्वोत्तम सामग्री है और इसीकी अनुकम्पासे हमपर उनकी महती कृपा बरसती है।

जो व्यक्ति भगवान्‌के प्रति पूर्ण समर्पण कर देता है और उनके लिये प्रत्येक कष्ट सहन करनेको कटिबद्ध हो जाता है, भगवान् उसे न तो कभी धोखा दे सकते हैं और न बहुत समयतक उसे यन्त्रणाका भोग ही कराते हैं।

मैंने सभी अवसरोंपर तात्कालिक सहायताके रूपमें भगवत्कृपाका इतनी बार अनुभव किया कि फिर किसी कर्मको करनेके पूर्व मुझे उसका खयाल ही न रहता, परन्तु ज्यों ही कर्म करनेमें हाथ बढ़ाता त्यों ही दर्पणमें प्रतिबिम्ब दीखनेके सदृश भगवत्सान्निध्यके भावमें मुझे क्या करना

उचित है इसका स्पष्ट पता लग जाता। इस प्रकार किसी कर्मके करनेमें मुझे सावधानी रखनेकी आवश्यकता न रही, परन्तु ऐसी स्थिति प्राप्त होनेके पूर्व मैं प्रत्येक कार्यमें सावधानी रखता।

किसी समय यदि कोई बाह्य कर्म भगवच्चिन्तनसे थोड़ी देरके लिये मुझे विचलित करता भी तो उसी समय भगवान्की ओरसे एक अपूर्व स्मृतिकी धारा आकर मेरी आत्माको आवृत कर लेती और मैं इतना आप्लावित एवं भावोन्मत्त हो उठता कि मेरे लिये अपने-आपको सँभालना कठिन हो जाता।

उपस्थित कर्मको त्यागकर प्रार्थनाके निमित्त एकान्तमें जानेपर जितनी भगवत्स्मृति होती, उससे कहीं अधिक कार्य करते समय मेरी रहती।

मुझे ऐसा आभास हुआ कि भविष्यमें किसी भारी मानसिक अथवा शारीरिक यन्त्रणाका मुझे भोग करना होगा। जिस भगवत्-सान्निध्यके भावका मैंने चिरकाल सुखोपभोग किया है, उसका लुप्त हो जाना ही मेरे लिये सबसे भारी विपत्ति हो सकती थी, परन्तु भगवान्के दयारूपी विरदने मुझे आश्वासन प्रदान किया कि भगवान् मुझे कदापि नहीं छोड़ेंगे और जो भी दुःखरूप विधान वे मेरे लिये रचेंगे, उसको सहन करनेकी शक्तिसे भी वे दयालु मुझे अवश्य अनुगृहीत करेंगे। इसका फल यह हुआ कि मैं सर्वथा निर्भय हो गया और अपनी किसी भी परिस्थितिके सम्बन्धमें अन्य किसी व्यक्तिसे परामर्श लेनेकी किसी समय भी मुझे आवश्यकता नहीं हुई। भूलसे किसीसे परामर्श लेनेको मैंने

जो कभी चेष्टा की भी तो उससे मुझे सदैव परेशानी ही उठानी पड़ी। भगवत्प्रेमकी वेदीपर मैं अपने जीवनको बलिदान करनेके लिये सदैव प्रस्तुत रहा हूँ। यही कारण है कि किसी प्रकारके भावी अनिष्टका भय मुझे कभी अस्थिर नहीं कर सका। पूर्ण समर्पण ही भगवद्धामकी प्राप्तिका एक अचूक साधन है, इसमें हमारे आचरणके लिये पर्याप्त प्रकाश सदैव सुलभ रहता है।

आध्यात्मिक जीवनके प्राथमिक कालमें हमें स्वार्थरहित हो अपने कर्तव्यका पालन ईमानदारीके साथ करना चाहिये, इससे हमें अनिर्वचनीय आनन्दकी उपलब्धि होगी। संकटकालमें हमें एकमात्र भगवान्‌की ही शरण ग्रहण कर उनसे उनकी अहैतुकी कृपाके लिये प्रार्थना करनी चाहिये, ऐसा करनेसे हमें अवश्य शान्ति प्राप्त होगी।

अधिकांश लोग शरणागतिके मार्गमें उन्नति नहीं कर पाते, क्योंकि जीवनकी परम साध्य वस्तु भगवान्‌की वे उपेक्षा कर केवल तपश्चर्या और विशेष साधनोंके करनेमें ही आसक्त हो जाते हैं। इसका स्पष्ट आभास उनके कर्मोंसे मिलता है और यही कारण है कि हम उनमें कोई ठोस गुण नहीं देखते।

भगवच्छरणागतिके लिये न तो किसी विज्ञानकी आवश्यकता है और न किसी विशेष कलाकी ही, आवश्यकता है दृढ़ निश्चयसे युक्त हृदयकी, जो अनन्य भावसे भगवान्‌का चिन्तन करे और उन्हींमें सर्वभावेन रमण करे।

(४)

सन्त लारेंसकी जिन महाशयके साथ बातचीत हुई थी वे कहते हैं कि भगवच्छरणमें जानेकी उनकी जैसी प्रक्रिया थी

उसके विषयमें वे मुझसे बहुत बार हृदय खोलकर बात करते। इसका कुछ दिग्दर्शन पूर्वके संवादोंमें कराया जा चुका है।

भाई लारेंसने कहा—'जो वस्तुएँ एवं क्रियाएँ हमें भगवद्विमुख न करें, भगवन्मार्गमें केवल कण्टकरूप ही बनें, उनका सच्चे हृदयसे त्याग ही भगवच्छरणागतिकी प्रक्रियाका सुन्दर स्वरूप है। स्वतन्त्रता एवं सरलतापूर्वक निरन्तर भगवान्‌के साथ वार्तालाप करनेका हम अपनेको अभ्यासी बनायें। उनको अपने अत्यन्त निकट अनुभव करें, उनके सम्मुख प्रतिक्षण अपनेको समझें। जिस कार्यके करनेमें हमें सन्देह हो, उसके विषयमें भगवान्‌की इच्छा जाननेके लिये एवं जिस कार्यको हम स्पष्टरूपसे मानते हैं कि भगवान् हमसे करवाना चाहते हैं, उसको समुचित ढंगसे करनेके लिये हम उनसे उनकी सहायताकी याचना करें और कार्यको करनेके पहले उसे भगवान्‌को समर्पित कर दें तथा उसके सम्पन्न हो जानेपर उन्हें इसके लिये हार्दिक धन्यवाद दें।'

भगवान्‌के साथ इस प्रकारके वार्तालापद्वारा हम उनकी असीम कृपा और पूर्णताको लक्ष्यमें रखकर निरन्तर उनकी स्तुति, पूजा एवं प्रेममें संलग्न रहेंगे।

अपनी त्रुटियों एवं कमजोरियों अथवा पापोंसे निरुत्साह न होकर भगवान्‌के अनन्त गुणोंपर भरोसा रखते हुए उनकी अहैतुकी कृपाके लिये हम पूर्ण श्रद्धाके साथ प्रार्थना करें। प्रत्येक अवसरपर ईश्वर अपनी कृपासे हमें कभी वञ्चित नहीं करते। इसका मैंने सदा-सर्वदा अनुभव किया है। हाँ, असफलता केवल उसी समय मिली जब मेरा मन

भगवत्सान्निध्यके भावसे विचलित हुआ या मैं भगवान्से उनकी सहायताके लिये याचना करना भूल गया।

जब हम अपनी शङ्काओंके समय निरुपाय होकर भगवान्से उनके समाधानके लिये प्रार्थना करते हैं तो वे दयालु हमें सदा प्रकाश प्रदान करते हैं।

हमारी शुद्धि हमारे कार्यपरिवर्तनपर कदापि निर्भर नहीं करती, बल्कि वह तो उन्हीं कार्योंको जिन्हें बहुधा हम अपने स्वार्थके लिये किया करते हैं, भगवदर्थ करनेपर ही निर्भर करती है और खेदकी बात तो यह है कि अधिकांश लोग साधनको ही साध्य समझ लेते हैं। इसका फल यह होता है कि उन्हें ऐसे कार्य करनेकी आदत पड़ जाती है, जिन्हें वे स्वार्थपूर्ण भावनाओंके कारण अत्यन्त दोषयुक्त बनाकर बीचमें ही छोड़ देते हैं।

भगवान्की शरणमें जानेकी सर्वोत्तम प्रक्रिया तो यही है कि लोगोंकी प्रसन्नताका विचार न करके हम अपने नित्यप्रतिके कार्योंको जहाँतक हो सके एकमात्र भगवत्प्रीत्यर्थ ही करें।

हमारी उपासनाका समय अन्य समयसे भिन्न होना चाहिये, ऐसा सोचना ही भारी भूल है। उपासनाके समय उपासनाके द्वारा जिस प्रकार हम भगवान्के सम्मुख होते हैं, ठीक उसी प्रकार कार्य करते हुए कार्यके द्वारा हम उनके सान्निध्यका अनुभव करते हैं।

भगवत्सान्निध्यका अनुभव ही मेरी एकमात्र उपासना है। इसमें मेरा चित्त बाह्य अनुसन्धानसे विरत होकर भगवत्प्रेममें निमग्न हो जाता है। उपासनाका निर्धारित समय समाप्त हो

जानेपर भी मेरे लिये कोई अन्तर नहीं होता, क्योंकि मैं तो पूर्ण भावसे भगवान्‌की स्तुति करता एवं उनको धन्यवाद देता हुआ उनसे सदा मिला रहता हूँ, जिससे मेरा जीवन एकरस आनन्दमें ही बीतता है तथापि मैं आशा करता हूँ कि भगवान् मेरे लिये किसी ऐसे दुःखका विधान रचेंगे, जिससे मैं और भी श्रद्धावान् बनूँ।

हमें चाहिये कि निश्चितरूपसे हार्दिक प्रसन्नताके साथ अपना सारा विश्वास भगवान्‌में स्थापित कर दें और उन्हींके पदारविन्दोंमें पूर्णरूपेण आत्मसमर्पण भी करें। ऐसी दृढ़ निष्ठा बनाये रखना चाहिये कि भगवान् कभी किसी कालमें भी हमें धोखा नहीं दे सकते।

भगवत्प्रीत्यर्थ छोटे-से-छोटे कार्य करते हुए हमें कभी उकताना नहीं चाहिये। भगवान् कार्यकी महत्ताकी ओर नहीं देखते, वे देखते हैं एकमात्र हमारी भावनाको, जिससे प्रेरित होकर हम कार्य करते हैं। ऐसा प्रायः होता है कि आरम्भमें हम प्रयत्न करते हुए भी कभी-कभी असफल हो जाते हैं, इसपर न तो आश्चर्य प्रकट करना चाहिये और न निराशा ही। प्रयत्नको अविरतरूपसे जारी रखनेपर अन्तमें हमें एक ऐसी सुन्दर स्थिति प्राप्त होगी, जो हमसे बिना हमारी किसी सावधानीके ऐसे कार्य कराती रहेगी, जिनसे हमें अत्यन्त प्रसन्नता प्राप्त होगी।

श्रद्धा, विश्वास तथा दया—ये धर्मकी साररूपी त्रिपुटी हैं, इसके सेवनसे हमारा जीवन भगवत्संकल्पमय हो जाता है और इसके अतिरिक्त जो कुछ बच रहता है, उसका कोई महत्त्व नहीं, हाँ उसको हम श्रद्धा एवं दयासे अभिभूत कर

अपने लक्ष्यकी प्राप्तिमें प्रयुक्त कर सकते हैं।

श्रद्धाके सामने सब कुछ सम्भव है; विश्वास कठिनको सुगम बनाता है और प्रेम तो उसे सुगमतर बना देता है। और जो इन तीनों सद्गुणोंका दृढ़तापूर्वक अभ्यास करता है, उसके लिये तो कहना ही क्या, समस्त मार्ग कण्टकहीन होकर उसका स्वागत करता है।

हमें अपने सम्मुख ऐसा ध्येय रखना चाहिये जिससे यथासम्भव इसी जीवनमें हम भगवान्‌के सर्वोत्तम उपासक बन जायँ और उनके उपासक बने रहनेकी हमारी इच्छा अनन्त कालतक नित्य नूतन बनी रहे।

आध्यात्मिक जीवनके क्षेत्रमें प्रवेश करते समय हमें आत्मनिरीक्षण करना चाहिये, इससे हमें यथार्थ स्थितिका पता चलेगा कि हम कहाँ हैं? ध्यानपूर्वक देखनेपर अनुभव होगा कि हम सचमुच घृणाके ही योग्य हैं, और किसी प्रकार भी धार्मिक कहलाने लायक नहीं; क्योंकि हम सब प्रकारके दुःखों एवं अगणित दुर्घटनाओंके शिकार बने रहते हैं, जो हमें सदा संतप्त बनाये रखती हैं, और उनसे हमारा आभ्यन्तरिक एवं बाह्य जीवन, हमारा स्वास्थ्य और भाव निरन्तर आन्दोलित होता रहता है। सारांश यह कि हम ऐसे प्राणी हैं जिन्हें भगवान् कृपापरवश हो बाह्य एवं आन्तरिक दुःखोंद्वारा दीन बनाते रहते हैं। भगवान्‌के इस अयाचित अनुग्रहका अनुभव हो जानेपर फिर दूसरे मनुष्योंके द्वारा हमें जो कष्ट, प्रलोभन एवं विरोध तथा प्रतिवाद प्राप्त होगा, उसपर न तो हमें आश्चर्य होगा और न ग्लानि ही, बल्कि इसके विपरीत जबतक भगवान्‌की यह इच्छा होगी, इनको

हम सहर्ष शिरोधार्य कर सहन करेंगे; क्योंकि इसमें हमारा सब तरहसे मङ्गल ही निहित है।

पूर्णताकी जिस सीमातक पहुँचनेकी मनुष्य आकांक्षा करता है उतना ही अधिक वह भगवत्कृपाका अनुगत होता है।

एक बार मठके मेरे एक घनिष्ठ मित्रने मुझसे पूछा कि 'किस प्रक्रियासे मैंने भगवत्सान्निध्यकी अखण्ड चेतना प्राप्त की है?' इसके उत्तरमें मैंने उनसे निवेदन किया कि 'मठमें प्रवेश होनेके दिनसे आजतक भगवान्‌को ही मैंने अपने विचारों और आकांक्षाओंका केन्द्रबिन्दु बनाया है, जिससे मेरे विचार और भाव सदा उन्हींकी ओर प्रवाहित होकर उन्हींमें लीन हों।'

साधनकी प्रारम्भिक अवस्थामें एकान्तमें जाकर प्रार्थनाके निर्धारित समयको मैं भगवच्चिन्तनमें लगाता; विद्वत्तापूर्ण तर्कों तथा परिश्रमसाध्य ध्यानकी प्रणाली स्वीकार न कर सरल भक्तिपूर्ण भावों और भगवद्विश्वासके प्रकाशद्वारा ही अपने मनको भगवत्सत्ताके निश्चयसे दृढ़ करता तथा उसीकी गहरी छाप हृदयपर बैठाता। इस प्रकार अपनी इस छोटी एवं अचूक प्रक्रियाके द्वारा मैं भगवान्‌के ज्ञान और प्रेममें संलग्न हो गया और निश्चय किया कि यथासम्भव भगवान्‌को कभी न भूलकर मैं भगवत्सान्निध्यकी उपलब्धिके लिये ही अधिक-से-अधिक प्रयत्न करता रहूँगा।

इस प्रकार प्रार्थनाद्वारा जब मेरा मन भगवत्सम्बन्धी ऊँचे भावोंसे घिर जाता तब मैं पाकशालामें अपने निश्चित कामपर चला जाता; क्योंकि मठके लोगोंके लिये मैं ही भोजन

बनाता था। रसोईघरमें पहुँचकर अपने कामकी आवश्यक वस्तुओंका मैं अलग-अलग विचार करता तथा कब और किस ढंगसे क्या-क्या बनाना है इसका निश्चय करता। इसी ढंगसे कार्यके अतिरिक्त मेरा सब समय उपासनामें ही व्यतीत होता।

जब मैं अपना कार्य आरम्भ करता तो भगवान्में पुत्रकी भाँति विश्वास रखते हुए उनसे इस प्रकार निवेदन करता—'हे नाथ! आप सदा मेरे साथ हैं और मैं आपके ही आज्ञापालनार्थ अपना मन इन बाहरी कार्योंमें लगाता हूँ। मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि ऐसी कृपा करें जिससे काम करते हुए भी मैं आपके सान्निध्यका अनुभव करूँ। और इसी लक्ष्यकी सिद्धिके लिये आप अपनी सहायतासे मुझे उन्नत करें; हे दीनवत्सल! मेरे सब कार्य एवं प्रेमको स्वीकार करें।'

कार्यके समय कार्य करते हुए भी मैं भगवान्से निरन्तर सरलतापूर्वक बातचीत करता रहता, उनसे उनकी कृपाके लिये प्रार्थना करता और उन्हींको अपने समस्त कर्म समर्पित कर देता।

कार्यकी समाप्तिपर मैं स्वयं ही अपनी जाँच करता कि मुझसे कैसा कार्य हुआ है। यदि मुझे संतोष होता कि वह सुचारुरूपसे सम्पन्न हुआ है तो इसके लिये मैं भगवान्को ही धन्यवाद देता; अन्यथा मैं उनसे क्षमा-याचना करता। और बिना हतोत्साह हुए मैं अपने मनको सीधे फिर काममें लगाता, साथ ही भगवत्सान्निध्यकी प्रक्रियामें ऐसा संलग्न हो जाता मानो मैं कभी उससे विचलित ही नहीं हुआ। इस

प्रकार असफलतासे ऊपर उठते हुए और बार-बार भगवद्विश्वास तथा भगवत्प्रेमके कार्य करते हुए मेरी ऐसी स्थिति हो गयी है, जिसमें भगवान्‌को भूलना मेरे लिये उतना ही कठिन है जितना कि आरम्भमें उनकी स्मृति बनाये रखना मेरे लिये था।'

भाई लारेंसके एक साथी उनके सम्बन्धमें इस प्रकार लिखते हैं—'भगवत्सान्निध्यके अनुभवसे भाई लारेंसको इतना अधिक लाभ हुआ कि उनके लिये यह स्वाभाविक ही था कि वे दूसरोंको भी इसके प्रयोगके लिये कहते। तथापि उनके किसी तर्ककी अपेक्षा उनका आदर्श जीवन ही अधिक उत्साह प्रदान करता था, उनकी मुखाकृतिसे ही उपदेश झरता था, उसमें ऐसा मधुर एवं शान्त भक्तिरस झलकता कि देखनेवालोंको बिना प्रभावित किये नहीं रह सकता और यह देखा गया कि रसोईके जल्दीके कामोंमें भी वे अपनी स्मरणशक्ति और भगवद्भावनाको सुरक्षित बनाये रखते। वे कार्य करनेमें न तो व्यग्र होते और न टालमटोल करते, बल्कि समचित्त हो मनकी अखण्ड गम्भीरता और शान्तिके साथ वे प्रत्येक कार्य समयानुकूल करते' वे कहा करते, 'कार्य और उपासनाका समय दोनों ही मेरे लिये समान हैं। मैं उनमें कुछ भी अन्तर नहीं देखता। भोजन परोसनेके समय जब बहुत-से लोग भिन्न-भिन्न वस्तुओंके लिये मुझे पुकारते तो उस समय रसोईके उस कोलाहलमें भी मैं शान्त चित्त हो भगवान्‌से ऐसे चपटा रहता जैसा कि मैं किसी धार्मिक संस्कार-विधिमें संलग्न होता।'

पत्र

(१)

जिस प्रक्रियासे मैंने भगवत्सान्निध्यका निरन्तर अनुभव करनेकी स्थिति प्राप्त की है, उसे जाननेके लिये आप बहुत उत्सुक हैं—यह मैं समझता हूँ। भाई! यह अनुभूति तो एकमात्र मुझे भगवत्कृपासे ही प्राप्त हुई है। यह बात मैं आपको अवश्य बतला देना चाहता हूँ कि आपके अनुनय-विनयके कारण ही बड़ी मुश्किलसे मैं इसके सम्बन्धमें लिखनेको उद्यत हुआ हूँ और ऐसा मैं इसी शर्तपर कर रहा हूँ कि आप मेरा यह पत्र किसी अन्य व्यक्तिको न दिखायें। यदि मैं यह समझता कि आप इसे दूसरोंको दिखाये बिना नहीं रह सकते तो आपके कल्याणके लिये मेरी जितनी सद्भावनाएँ हैं, वे सब मिलकर भी मुझे इस पत्रको लिखनेमें कदापि प्रवृत्त न कर सकतीं। मेरी अनुभूतिका विवरण इस प्रकार है—

भगवच्छरणकी प्राप्तिकी भिन्न-भिन्न प्रकारकी प्रक्रियाओंको मैंने बहुत-सी पुस्तकोंमें पढ़ा और आध्यात्मिक जीवन बनानेके लिये विविध प्रकारके साधनोंका अध्ययन भी किया, परंतु मुझे ऐसा लगा कि जिस बात की खोजमें मैं हूँ, यदि पुस्तकोंमें लिखे हुए सब साधनोंके अनुसार चलूँ तो मेरा मार्ग सुगम बनानेकी अपेक्षा और भी जटिल बना देंगे। मेरी लालसा एकमात्र सब प्रकारसे भगवान्‌का ही हो जानेमें थी। अन्तमें मैंने निश्चय किया कि पूर्ण (भगवान्) की प्राप्तिके लिये मैं सम्पूर्ण लौकिक वस्तुओंका

त्याग कर दूँ और पापमोचक भगवान्‌में पूर्णरूपेण आत्मसमर्पण कर मैंने उनके प्रेमके लिये ही उनके सिवा अन्य सब वस्तुओंका परित्याग कर दिया। तथा मैं इस प्रकार रहने लगा मानो मेरे और भगवान्‌के सिवा संसारमें दूसरा कोई है ही नहीं। कभी मैं अपनेको भगवान्‌के सम्मुख ऐसा समझता जैसे न्यायाधीशके चरणोंपर गिरा हुआ कोई अपराधी! और कभी अपने पिता, अपने परमात्माके रूपमें अपने हृदयमें उनका साक्षात्कार करता। अधिकतर यथासम्भव भगवान्‌को मैं अपने सम्मुख समझकर पूजा-अर्चा करता। जब-जब मेरा मन इधर-उधर भटकता, उसी-उसी क्षण मैं उसे खींचकर भगवान्‌में लगा देता। इस प्रक्रियामें मुझे पर्याप्त संतापका अनुभव हुआ। तथापि कठिनाइयोंके उपस्थित होनेपर मनके बलात् विचलित हो जानेपर भी मैं बिना किसी घबराहट या अशान्तिके तत्परताके साथ अपने अभ्यासमें लगा रहता। उपासनाके निर्धारित समयमें जैसे मैं भगवान्‌में संलग्न रहता, उसी प्रकार मैंने सारे दिन रहनेका अपना नियम बना लिया। सब समय, प्रतिपल, प्रतिक्षण, यहाँतक कि कार्यमें अतिव्यस्त रहनेपर भी मैं अपने मनको भगवद्‌विस्मरण करानेवाले समस्त विचारोंसे बचाता रहता।

दीक्षित होते ही मैंने इस प्रक्रियाको अपने नित्यप्रतिके नियममें ले लिया। यद्यपि अभी मैं इसे अतिस्वल्प मात्रामें कर पाया हूँ तो भी मुझे इससे बहुत लाभ हुआ है। और यह सब मैं खूब समझता हूँ, एकमात्र भगवान्‌की दया और कृपाका ही प्रसाद है। क्योंकि भगवान्‌के अनुग्रह बिना हम

कुछ भी नहीं कर सकते। फिर किसी अन्य व्यक्तिकी अपेक्षा मैं तो और भी असमर्थ ठहरा। परन्तु जब हम भक्तिभावसे अपनेको भगवान्‌की पवित्र सन्निधिमें रखते हैं, उन्हींको सदा अपने सम्मुख समझते हैं तो हम कभी कोई ऐसा कार्य नहीं कर सकते, जिससे उनका अपराध बने या वे अप्रसन्न हों। बल्कि इससे हमारे भीतर एक अलौकिक पवित्र स्वतन्त्रता जाग्रत् होती है। अर्थात् यह कहूँ कि भगवान्‌के साथ हमारा ऐसा मेल-जोल हो जाता है, जिससे हम निःसंकोच उनसे जिस समय और जैसे अनुग्रहकी आवश्यकता होती है, बिना किसी असफलताके भयके माँग सकते हैं। सारांश यह कि इसी प्रक्रियाके बार-बार अनुगमनसे यह हमारे स्वभावगत हो जाती है और भगवत्सान्निध्यकी निरन्तर अनुभूति हमारी स्वाभाविक वस्तु बन जाती है। भगवान्‌की मुझपर इतनी अपार कृपा है कि उसकी प्रशंसा करनेमें भी मैं अपनेको असमर्थ पाता हूँ। आइये, आप मेरे साथ एक हो उन्हें इसके लिये धन्यवाद दें; क्योंकि मुझ-जैसे दीन, मलिन, पापीपर दयापरवश हो उन्होंने कितना अनुग्रह किया है।

भगवान्‌का यशोगान सर्वत्र हो। शान्तिः शान्तिः शान्तिः।

भगवान्‌के नाते आपका.......................

(२)

श्रद्धेय............

कुछ दिन पूर्व एक धर्मनिष्ठ व्यक्तिसे मेरी बातचीत हुई। उन्होंने कहा कि आध्यात्मिक जीवन अनुग्रहका जीवन है, जो दासोचित भयसे प्रारम्भ होता है और शाश्वत जीवनकी

आशासे बढ़ता है एवं विशुद्ध प्रेममें पूर्णताको प्राप्त होता है। इनमेंसे प्रत्येक अवस्थाके अलग-अलग स्तर हैं, जिनको क्रमशः पार करके मनुष्य अन्तमें प्रेमकी पराकाष्ठाको प्राप्त करता है।

मैंने उन सारे उपायोंका अनुसरण नहीं किया, बल्कि इसके विपरीत किसी अज्ञात अन्तःप्रेरणाने मुझे इनका अनुसरण करनेसे रोक दिया। यही कारणा था कि दीक्षित होते ही मैंने निश्चय किया कि भगवान्‌में ही मैं आत्मसमर्पण करूँ और उनके प्रेमके लिये उनके सिवा और सबका परित्याग कर दूँ, क्योंकि उनके प्रेमका उत्तर देनेके लिये मेरे पास यही एक सर्वोत्तम उपाय था।

प्रथम वर्ष जब मैं निश्चित समयपर उपासनाके लिये जाता तो प्रायः मृत्यु, धर्मराजके निर्णय, स्वर्ग, नरक तथा अपने पापोंके विचारोंमें ही संलग्न रहता, तदुपरान्त उपासनाके निश्चित समयके अतिरिक्त सब समय, यहाँतक कि अपना कार्य करते हुए भी लगातार कुछ वर्षोंतक मैंने अपने मनको सावधानीसे भगवत्सान्निध्यका अनुभव करनेमें लगाये रखा। भगवान्‌को सदा मैं अपने साथ समझता और अपने अन्तरमें प्रायः उन्हींका अनुभव करता। अन्तमें मेरी ऐसी स्थिति हो गयी कि उपासनाके निश्चित समयमें भी इसी भावनाकी मुझमें अलक्षितरूपसे आवृत्ति होती रहती, जिससे मुझे बहुत प्रसन्नता और संतोषका अनुभव होता। इस प्रक्रियाने मेरे मनमें भगवान्‌का ऐसा अचिन्त्य स्वरूप स्थापित कर दिया कि जिसके सम्बन्धमें एकमात्र श्रद्धा ही मुझे संतोष प्रदान कर सकती थी।

जैसे मैंने ऊपर लिखा है ठीक वैसी ही मेरी प्रारम्भिक अवस्था थी; तथापि मैं आपको यह अवश्य बतला देना चाहता हूँ कि पहले दस वर्षोंमें मुझे बहुत सन्ताप भोगना पड़ा। भगवान्‌के प्रति जितनी भक्ति होनी चाहिये उतनी न होनेका भय, अपने अतीतके पापोंकी बार-बार स्मृति और मुझ अयोग्यपर भगवान्‌की ऐसी महती अनुकम्पाएँ—ये सब मेरे सन्तापका विषय और कारण थीं। और इसी कालमें मैं कई बार फिसला, परंतु सहसा उसी समय सँभल गया। उस समय मुझे ऐसा लगता मानो समस्त भूतप्राणी, मेरी बुद्धि और स्वयं भगवान् भी मेरे विरुद्ध हैं, केवल श्रद्धा ही मेरा एकमात्र सम्बल है। भगवान्‌के अनुकम्पापात्र होनेकी स्थिति, जिसे लोग कठिनतासे प्राप्त कर पाते हैं, मैं सहसा पा गया। यही विचार मुझे कभी-कभी सताने लगता और मैं सोचने लगता कि कहीं मेरी यह स्थिति कल्पनामात्र तो नहीं है। इसी बातको मैं फिर कभी-कभी आत्मप्रवञ्चनाके रूपमें देखता और सोचता कि भला, मेरा उद्धार कहाँ!

मैंने सोचा, मेरे शेष दिन बस इन्हीं चिन्ताओंमें बीतेंगे। परंतु आश्चर्यजनक बात यह हुई कि चिन्ताओंके कारण मेरी भगवान्‌में जो श्रद्धा थी, वह घटनेकी अपेक्षा और भी बढ़ गयी। मैंने सहसा अनुभव किया कि मेरा तो एकदम परिवर्तन हो गया है। मेरी आत्मा जो पहले चिन्तामें घुल रही थी, अब आभ्यन्तरिक परम शान्तिको प्राप्त हो गयी—मानो वह अपने केन्द्र तथा विश्रामस्थलपर पहुँचकर स्थिर हो गयी हो।

तदुपरान्त श्रद्धा, दीनता और प्रेमभावनासे युक्त हो मैं

भगवत्सान्निध्यका सुख भोग करने लगा। मेरे किसी कार्य एवं विचारसे कहीं भगवान् अप्रसन्न न हो जायँ, इसके लिये मैं सदा सचेत रहता और विश्वास करता कि इस प्रकार यथासम्भव अपने कर्तव्यका पालन करनेपर भगवान् फिर जैसे चाहेंगे, वैसे ही मेरे साथ करेंगे।

इस समय जैसी मेरी स्थिति है, उसको मैं व्यक्त नहीं कर सकता। हाँ, इतना कह सकता हूँ कि इससे मुझे न तो किसी प्रकारका कष्ट होता है और न इसके सम्बन्धमें मेरे मनमें कोई उलझन ही है; क्योंकि भगवदिच्छाके अतिरिक्त अब मेरी कोई स्वतन्त्र इच्छा ही नहीं रह गयी और उन्हींकी इच्छा-पूर्तिके लिये मैं सब कार्य करता हूँ। मैंने अपने-आपको एकमात्र भगवदिच्छापर छोड़ दिया है और देखता हूँ कि भगवान्‌की इच्छाके विरुद्ध अथवा उन्हींसे प्रेम करनेकी भावनाके बिना मैं पृथ्वीपरसे एक तिनकातक नहीं उठा सकता।

निर्धारित समयपर की जानेवाली समस्त उपासनाओं एवं स्तुति-पाठको मैंने छोड़ दिया है; हाँ, वह उपासना और प्रार्थना मैं अवश्य करता हूँ, जिसके करनेके लिये मेरी स्थिति मुझे विवश कर देती है। अब तो एकमात्र भगवान्‌की पवित्र सन्निधिमें स्थिर रहनेको ही मैंने अपना जीवन-व्यापार बना लिया है। इस स्थितिमें अपनेको रखनेके लिये चित्तवृत्तियोंकी सामान्य एकाग्रता और प्रेमभावना ही पर्याप्त है। इसे मैं भगवान्‌की यथार्थ सन्निधि कह सकता हूँ या दूसरे स्पष्ट शब्दोंमें यह कहूँ कि यह स्थिति आत्माकी परमात्माके साथ स्वभावसिद्ध, मूक एवं निगूढ़ सम्भाषण की

है, जो प्रायः मेरे भीतर और कभी बाहर भी ऐसा आनन्दोल्लास उत्पन्न कर देती है, जिसके प्रबल वेगको जबरदस्ती मुझे रोकना पड़ता है। जिससे अन्य व्यक्तिको इसका पता न चल सके।

मैं निश्चित तथा असन्दिग्धरूपसे कह सकता हूँ कि पिछले तीस वर्षोंसे अधिक कालसे मैं लगातार भगवत्सान्निध्यका सुखोपभोग करता आ रहा हूँ। आप कहीं उकता न जायँ इसलिये मैं बहुत-सी बातोंका यहाँ उल्लेख नहीं कर रहा हूँ तथापि इस बातसे मैं आपको अवगत करा देना उचित समझता हूँ कि किस रूपमें मैं अपने-आपको अपने राजाधिराज भगवान्‌के सम्मुख समझता हूँ।

भगवान्‌के प्रति मैंने सब प्रकारके अपराध किये हैं, मेरा जीवन दुर्गुण और भ्रष्टाचारकी मूर्ति ही है, ऐसा मानकर मैं अपने-आपको सबसे अधिक दीन-हीन समझता हूँ। अपने अपराधोंके पश्चात्तापसे अभिभूत होकर मैं भगवान्‌के सम्मुख इनको स्वीकार कर क्षमा माँगता हूँ और अपने-आपको उनके हाथोंमें सौंप देता हूँ; वे जैसा चाहें, मेरे साथ व्यवहार करें। परंतु दण्ड देना तो दूर रहा, भगवान् मेरे अपराधोंकी ओर देखतेतक नहीं, कृपा-दयासे सराबोर होकर वे मुझे आलिंगन करते हैं। अपने साथ-साथ खिलाते हैं और अपने करकमलोंसे मुझे परोसते हैं, यहाँतक कि अपने भण्डारकी चाबी मुझे सौंप देते हैं। हजारों प्रकारसे वे मेरे साथ बातचीत तथा क्रीड़ाएँ करते हैं और पूर्णरूपसे मुझे अपना कृपापात्र बना लेते हैं। इस प्रकार समय-समयपर मैं अपने-आपको भगवान्‌की पवित्र

सन्निधिमें अनुभव करता रहता हूँ।

भगवान्में तनिक अनुराग और चित्तवृत्तियोंकी एकाग्रता ही मेरी परम उपयोगी साधन-प्रणाली है। जिस मधुरता तथा प्रसन्नताका अनुभव एक शिशु अपनी माँका स्तन-पान करते हुए करता है, उससे बढ़कर मैं प्रायः अपने-आपको भगवान्में अनुरक्त पाता हूँ। साहसपूर्वक यदि कहूँ तो इस स्थितिको मुझे भगवान्का वक्षःस्थल कहना चाहिये, जिससे चिपककर मैं अनिर्वचनीय मधुर-रसका आस्वादन करते हुए गद्गद हो उठता हूँ।

यदि कभी आवश्यकता या दुर्बलताके कारण मेरा मन इस स्थितिसे अलग होता है तो तत्काल ही सचेत करनेके लिये अन्तरसे मुझे ऐसे मधुर एवं मोहक संकेत मिलते हैं जिन्हें कहनेमें संकोच होता है। पूज्यपादसे मेरी यही प्रार्थना है कि मुझ-जैसे अपात्र और कृतघ्नपर भगवान् जो महती कृपाएँ करते हैं, इनकी अपेक्षा आप मेरी अत्यन्त नीचता एवं कुटिलता पर ही ध्यान देंगे, जिसके सम्बन्धमें मैं आपको भलीभाँति सूचित कर चुका हूँ।

उपासनाके निश्चित समयमें भी मैं इसी प्रक्रियाका अविच्छिन्न रूपसे अनुगमन करता हूँ। कभी मैं ऐसा अनुभव करता हूँ कि मैं शिल्पी भगवान्के सम्मुख एक पाषाण-शिलाके सदृश हूँ, जिससे उनको एक मूर्तिका निर्माण करना है। अपनेको इस प्रकार भगवान्के सामने उपस्थित कर मैं उनसे प्रार्थना करता हूँ कि 'हे दयालो! मेरी अन्तरात्मामें आप अपनी प्रतिमूर्ति खींच दें और मुझे पूर्णरूपेण अपनी प्रतिकृति बना लें।'

अन्य समय जब मैं प्रार्थनामें संलग्न होता हूँ तो मुझे ऐसा अनुभव होता है कि मेरी आत्मा स्वतः, मेरे किसी प्रयत्न या विचारके बिना ऊपर उठ रही है। इस प्रकार अग्रसर होते-होते वह भगवान्के सम्मुख जाकर थोड़ी देरके लिये रुकती और फिर उन्हींमें दृढ़तापूर्वक स्थिर भी हो जाती है, मानो वह अपनी ध्येय वस्तुओंको पाकर अखण्ड शान्तिमें निमग्न हो।

मैं जानता हूँ लोग इस स्थितिको अकर्मण्यता, भ्रान्ति और अहङ्कार कहकर इसकी भर्त्सना करते हैं। मैं इसका अभिनन्दन करता हूँ और यह स्वीकार करता हूँ कि यदि आत्माको ऐसी शान्तिकी अवस्थाका सौभाग्य प्राप्त हो जाय तो यह उसके लिये एक पवित्र अकर्मण्यता और आनन्ददायक अहङ्कार ही है; क्योंकि ऐसी शान्तिकी स्थितिमें होनेके कारण वह पहले जिन बातों और कारणोंसे क्षुब्ध हो जाया करती थी अब नहीं होती। हाँ, असावधानीकी स्थितिमें ये बातें सहायक होनेकी अपेक्षा आत्माके मार्गमें बाधक सिद्ध हो सकती हैं।

दूसरी बात यह है कि ऐसी स्थितिको भ्रममूलक कहा जाय, यह मैं सहन नहीं कर सकता; क्योंकि जो आत्मा भगवान्की सन्निधिका सुखोपभोग करती है, वह भगवान्के अतिरिक्त और किसी वस्तुकी अपेक्षा ही नहीं रखती। इतनेपर भी यदि प्रवञ्चनामात्र ही समझी जाय तो भगवान् ही इसका उपाय करेंगे। भगवान्की इच्छापर ही सब कुछ निर्भर है; मैं तो केवल उन्हींको चाहता हूँ। और उन्हींमें सब प्रकारसे अनुरक्त होना चाहता हूँ; पूज्यचरण! आप मुझे

निश्चय ही अपनी सम्मतिसे अनुगृहीत करेंगे; आप जानते हैं कि उसका मैं सदा हार्दिक सम्मान करता हूँ; क्योंकि आपमें मेरी असाधारण श्रद्धा है। बस—भगवान्‌के नाते आपका.........

(३)

"...........अपार कृपासे आर्द्र भगवान् हमारे सामने सदा उपस्थित हैं। भाई! वे हमारे अभावको खूब समझते हैं और वे यह भी जानते हैं कि किसका कब, कैसे और कौन-सा अभाव दूर करना है। सचमुच मैं सोचता था कि भगवान् आपको शुद्ध करनेके लिये घोर संकटमें डालेंगे। निश्चय रखें, भगवान् अपने समयपर अवश्य आवेंगे, हो सकता है उस समय आवें जब कि आपके मनमें उसकी कोई सम्भावना भी न हो। प्रियवर! उनमें अधिक-से-अधिक विश्वास बढ़ाइये। आपपर उनकी जो कृपाएँ हैं, विशेषकर संकटकालमें जो धैर्य और सहिष्णुता आपको प्राप्त होती है, इन सबके लिये आप मेरे साथ एक-हृदय हो उनको धन्यवाद दें। यह स्पष्ट है कि वे दयालु आपका सदा ध्यान रखते हैं, उनको अपने सन्निकट समझकर सुखी होइये और प्रत्येक अवस्थामें उनके प्रति कृतज्ञता प्रकाशित करते रहिये।"

मैं भाई श्री........की सहिष्णुता और वीरताकी प्रशंसा करता हूँ। भगवान्‌ने उसे सुन्दर स्वभाव दिया है और उसकी अभिसन्धि सराहनीय है; परंतु उसमें अभी कुछ सांसारिक वासना है और काफी लड़कपन भी है। भगवान्‌ने कृपाकर जिस कष्टमें उसे डाला है, मुझे विश्वास है, इससे उसका हित ही होगा और उसे अपनी यथार्थ स्थितिका बोध होगा।

इस घटनाको देखते हुए उसे चाहिये कि सब ओरसे अपना विश्वास बटोरकर उसे भगवान्में स्थापित कर दे; एकमात्र वे ही सर्वत्र उसके साथ रहते हैं। भगवच्चिन्तन जितना अधिक हो सके, करना चाहिये, विशेषकर बड़ी भारी विपत्ति आ पड़नेपर तो यह अनिवार्य हो जाता है। इसके लिये अपने हृदयको तनिक भगवदभिमुखी करनेकी आवश्यकता है। सैनिक यात्रा (Uarch) या युद्धके समय, जब हाथमें तलवार हो, थोड़ा-सा भगवच्चिन्तन और भगवान्की किञ्चित् मानसिक उपासना बन जानेपर भगवान् इनको बड़े आदरके साथ ग्रहण करते हैं और खतरेके समय सैनिकका उत्साह ढीला होनेकी अपेक्षा बढ़ता है तथा उसके लिये ये कवचरूप हो जाते हैं।

इसलिये आप उसे कहें कि भगवान्का चिन्तन विशेषरूपसे करे। इस सुलभ एवं पवित्र अभ्यासको उसे धीरे-धीरे बढ़ाते जाना चाहिये। मानसिक उपासनाको शिशुवत् दिनमें प्राय: बार-बार करें, इससे सुगम और कोई उपाय नहीं और फिर इसका किसी दूसरेको पता भी न चलेगा। मैंने यहाँ जैसी विधि लिखी है, उसीके अनुसार उसे भगवच्चिन्तन करनेको आप कृपया कहें। एक सैनिकका जीवन आप जानते हैं, सदा खतरेमें रहता है। अत: यह विधि उसके लिये बहुत उपयुक्त और अत्यन्त आवश्यक है। मैं आशा करता हूँ, भगवान् उसकी और उसके परिवारके सब सदस्योंकी सहायता करेंगे, जिनके लिये मैं इस रूपमें अपनी सेवा उपस्थित कर रहा हूँ! भगवान्के नाते आप सबका—

(४)

...........भगवत्सान्निध्यकी अनुभूतिसे हमारे संघके एक भाईको जो सराहनीय लाभ एवं निरन्तर बल मिला है, उसीके सम्बन्धमें मैं आज इस अवसरपर उनके भाव आपको लिख रहा हूँ। हम दोनोंको इससे लाभ उठाना चाहिये।

इन भाईको दीक्षित हुए चालीस वर्ष हुए हैं। तबसे आजतक इनकी एक ही चिन्ता रही है कि मैं सदा भगवान्‌के सन्निकट रहूँ और कोई ऐसा कार्य न करूँ, कोई ऐसी बात न कहूँ तथा किसी ऐसे विषयका चिन्तन न करूँ, जिससे भगवान् अप्रसन्न हों। इसमें विशुद्ध भगवत्प्रेमके सिवा इनका दूसरा कोई हेतु नहीं है। और फिर भगवान्‌में जितना भी अधिक अनुराग हम कर सकें, कम ही है।

भगवत्सन्निकटताके भावमें ये इतने निमग्न रहते हैं कि प्रत्येक अवसरपर इनको भगवत्-सहायता स्वतः प्राप्त होती रहती है। तीस वर्षसे तो ये यदा आनन्दमग्न रहते हैं और कभी-कभी तो इतने विभोर हो उठते हैं कि इन्हें बाध्य होकर उसके वेगको रोकना पड़ता है और ऐसा करनेके लिये इन्हें ऐसे उपाय करने पड़ते हैं, जिनसे दूसरोंको इसका पता न चल सके।

यदि कभी भगवत्सान्निध्यकी अनुभूतिसे इनका मन किंचित् हटता भी है तो भगवान् सहसा उसी समय इनके चित्तको अपनी ओर पुनः आकर्षित कर लेते हैं। ऐसा प्रायः तभी होता है, जब ये किसी बाहरी कार्यमें अति संलग्न होते हैं। भगवान्‌के आन्तरिक संकेतका ये पूर्ण अनुरागके साथ

स्वागत करते हैं। इससे या तो इनका हृदय आतुर होकर भगवान्‌के अभिमुख होता है अथवा विनम्र एवं प्रेम-भावनासे ये परिप्लुत हो जाते हैं अथवा अपने प्रेमभावको ये इन उद्‌गारोंद्वारा अभिव्यक्त करने लगते हैं कि 'हे भगवन्! देखिये, मैं तो एकमात्र आपमें ही अनुरक्त हूँ। दयालो! मुझे आप अपना ही अनुगत बना लीजिये।' इसके अनन्तर इनको अनुभव होने लगता है कि प्रेमघन भगवान् इनकी इस पुकारका सहर्ष अनुमोदन करते हैं और इनके अन्तस्तलमें पुनः आ विराजते हैं। इस प्रकार बार-बारके अनुभवसे इनकी ऐसी दृढ़ धारणा बन गयी है कि ये सदा अपने हृदयमें ही भगवान्‌का दर्शन करते हैं और किसी भी कारणसे इसमें कभी कोई शङ्का नहीं होती।

पूर्णनिधि भगवान्‌को ये भाई निरन्तर अपने हृदयमें अनुभव करते रहते हैं। इससे इनके संतोष एवं शान्तिजनित सुखका अनुमान कदाचित् आप लगा सकें। अपने हृदयमें चिन्तामणिको पाकर ये चिन्तामुक्त हुए जितने अधिक सुखका उपयोग करना चाहें, बिना किसी बाधाके कर सकते हैं।

ये हमलोगोंकी अज्ञतापर सदा दुःख प्रकट किया करते हैं और प्रायः कहा करते हैं कि 'तुमलोग तो सचमुच दयाके पात्र हो जो तुच्छ विषयोंकी प्राप्तिमें ही संतोष मान लेते हो। भाई! भगवान् तो हमें अनन्त धनराशिसे सुसम्पन्न करना चाहते हैं और हम अपनी निकृष्ट भावनासे उनसे केवल क्षणभंगुर विषय ही चाहते हैं। कितनी भारी मूर्खता है कि दयासागर भगवान्‌की कृपाके अजस्र प्रवाहको हम इस

प्रकार रोक देते हैं। भगवान् जब कभी उत्कट श्रद्धासे संसिक्त प्राणी पा जाते हैं तब उसे अपनी कृपा-दयासे निहाल कर देते हैं। उनके कृपा-दयारूपी सागरका प्रवाह इतने प्रबल वेगसे उसकी ओर प्रवाहित होता है, मानो किसी बहुत भारी बाधाके कारण यह पहले रुका पड़ा था और अब मार्ग पा जानेपर जोर-शोरसे उमड़ आया हो।'

भगवत्कृपाका वेग जो बंद हो जाता है, इसके लिये हम स्वयं अपराधी हैं; क्योंकि इसका हम कुछ मूल्य ही नहीं आँकते। परन्तु अबतक जो हुआ सो हुआ, आगेके लिये हमें सचेत हो जाना चाहिये और भगवत्कृपाके प्रवाहका उन्मुक्त हृदयसे स्वागत करना चाहिये एवं इसके मार्गमें किसी प्रकारकी भी बाधा उपस्थिति नहीं करनी चाहिये। बल्कि आत्मानुसंधान करते हुए भगवत्कृपाके मार्गमें स्थित समस्त विघ्न-बाधाओंको ढूँढ़-ढूँढ़कर, उन्मूलन करते रहना चाहिये। भगवत्कृपाको प्राप्त करनेके लिये हम इस प्रकार अपने हृदयको शुद्ध करें और जो समय अबतक हम अपने हाथसे खो चुके हैं, उसकी तत्परताके साथ क्षति-पूर्ति करें, क्योंकि क्या पता है, हमारे जीवनका शेष भाग बहुत कम हो और मृत्यु हमें ग्रसनेको तैयार बैठी हो। इसलिये मृत्युके आनेसे पहले ही हमें सब प्रकारसे तैयार रहना चाहिये। भाई! मृत्युसे तो हम बच नहीं सकते, एक दिन तो अवश्य मरना होगा और यदि भगवत्कृपाको प्राप्त किये बिना मरे तो फिर इस असफलताका कोई उपाय ही नहीं रह जायगा। मैं फिर कहता हूँ कि हमें आत्मानुसन्धानमें अविलम्ब संलग्न हो जाना चाहिये। क्योंकि समय जा रहा है,

विलम्बकी कहीं गुंजाइश नहीं और मृत्यु हमारे सामने मुँह बाये खड़ी है। मुझे आशा है, इसके लिये आप यथेष्ट सावधान होंगे और मृत्युके समय आपको किसी प्रकारका पश्चात्ताप न होगा। मैंने आपको जो बात लिखी है, वह नितान्त आवश्यक है। हमें दत्तचित्त होकर इसमें सदा जुटे रहना चाहिये; क्योंकि आध्यात्मिक जीवनमें यदि हम अग्रसर न हुए तो इसका अर्थ होगा कि हम पतनकी ओर जा रहे हैं। जिन्हें आत्मानुभूतिका थोड़ा-सा भी सुख प्राप्त हुआ है, वे भाग्यशाली प्राणी निद्रामें भी उत्कर्षकी ओर ही बढ़ते हैं। हमारी आत्मा यदि दुःखों और क्लेशोंसे आन्दोलित होती हो तो हमारे हृदयमें जो भगवान् विराजते हैं, उनसे हमें निवेदन करना चाहिये। वे अति शीघ्र इन्हें शान्त कर देंगे।

इन सद्भावोंको आपके सामने रखनेका मैंने इसलिये साहस किया है कि आप इनका अपने सद्भावोंसे मिलान कर सकें। दूसरे भगवान् न करें, यदि आपकी भावनाएँ शिथिल हो गयी हों तो ये उनको जाग्रत और प्रज्वलित करनेमें सहायक होंगे; क्योंकि इन भावनाओंका लुप्त हो जाना ही सबसे बड़ा दुर्भाग्य है। जिस उत्सुकताके साथ हमने आध्यात्मिक क्षेत्रमें प्रवेश किया था, उसे हम दोनोंको फिरसे स्मरण करना चाहिये और इस भाईके जीवन तथा सद्भावोंसे हमें लाभ उठाना चाहिये। इन्हें संसारमें बहुत कम लोग जानते हैं, परंतु भगवान्‌से इनका घनिष्ठ परिचय है और वे इनसे खूब लाड़ प्यार करते हैं। मैं आपकी उन्नतिके लिये सदा प्रार्थी हूँ, आप मेरे लिये निरन्तर प्रार्थना करें। इति।

भगवान्‌के नाते आपका—

(५)

......एक बहिनकी प्रेषित दो पुस्तकें और एक पत्र मुझे आज प्राप्त हुए। ये बहिन दीक्षित होनेके लिये उत्सुक हैं, इसके लिये वे आपके धार्मिक संघके विशेषकर स्वयं आपके शुभाशीर्वादकी आकांक्षिणी हैं एवं इसपर वे बहुत कुछ निर्भर करती हैं। यह बात इनके पत्रसे स्पष्ट ध्वनित होती है। मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि आप इन्हें अपने शुभाशीर्वाद तथा शुभ कामनाओंसे वंचित न करें। भगवान्‌से प्रार्थना करें, जिससे कि वे भगवत्प्रेमको ही एकमात्र लक्ष्य-बिन्दु बनाकर आत्मोत्सर्ग करें तथा सम्यक् भावसे भगवान्‌में ही अनुरक्त रहनेका दृढ़ निश्चय कर सकें। इस बहिनने जो दो पुस्तकें मुझे भेजी हैं, उनमेंसे एक मैं आपको भेज दूँगा; भगवान्‌की सर्वव्यापकताका ही इसमें प्रतिपादन किया गया है। मेरे विचारमें यह एक ऐसा विषय है जिसमें समस्त आध्यात्मिक जीवनका समावेश स्वत: ही हो जाता है और जो कोई इसका विधिपूर्वक अभ्यास करता है, उसका जीवन अल्पकालमें ही आध्यात्मिक बन जाता है।

मैं जानता हूँ इसके सम्यक् अभ्यासके लिये हृदयसे अन्य सब प्रकारकी कामनाओंका त्याग कर देना अत्यावश्यक है; क्योंकि भगवान् केवल हृदयपर ही अधिकार जमाते हैं और जबतक हृदयमें सांसारिक कामनाएँ भरी हैं, वे वहाँ कदापि नहीं विराज सकते। भगवान्‌का साम्राज्य हृदयमें तभी स्थापित होता है, जब हम अपने हृदयको वासनारहित कर एकमात्र भगवान्‌के लिये ही उसे उन्मुक्त कर देते हैं।

संसारमें वही जीवन मधुर एवं आनन्दवर्धक है, जिसमें निरन्तर भगवान्‌के साथ वार्तालाप होता है। ऐसे जीवनके समक्ष अन्य सभी प्रकारके जीवन तुच्छ एवं सारहीन हैं। इस बातको भलीभाँति वही समझ सकता है, जिसने ऐसा जीवन बनानेका अभ्यास एवं अनुभव किया है तथापि केवल सुखानुभूतिके लिये इसका अभ्यास किया जाय, ऐसा मैं आपको परामर्श नहीं देता। ऐसा जीवन बनानेके लिये हमें अवश्य अभ्यास करना है, पर सुखकी खोजके लिये नहीं, बल्कि विशुद्ध भगवत्प्रेमके लक्ष्यको अपने सम्मुख रखकर ही इसमें संलग्न होना है और यह इसलिये कि स्वयं भगवान् हमसे ऐसा ही चाहते हैं।

यदि कहीं मैं उपदेशक होता तो निश्चय ही मैं भगवत्सान्निध्यका अनुभव करनेकी प्रक्रियाको सर्वप्रथम स्थान देता। और यदि मैं पथप्रदर्शक होता तो समस्त विश्वको इसीमें संलग्न रहनेकी अनुमति प्रदान करता; क्योंकि इसे मैं स्वयं अत्यावश्यक तथा सुगम भी समझता हूँ।

कदाचित् हम यह समझ पाते कि भगवान्‌की कृपा एवं सहायताकी हमें कितनी अधिक आवश्यकता है तो हम कभी एक क्षणके लिये भी भगवद्विस्मरण न कर सकते। आप मेरी बात मानिये और इसी क्षण पवित्र एवं दृढ़ निश्चय कीजिये कि अबसे जान-बूझकर भगवान्‌को कभी नहीं भुलायेंगे और जीवनके शेष दिन परमपावन भगवत्-सान्निध्यमें ही व्यतीत करेंगे। यदि भगवान्‌की यह इच्छा हो कि उनके प्रेमके लिये आप अन्य सब सुखों एवं आश्वासनोंसे वञ्चित किये जायँ तो आशा है, आप इसका भी सहर्ष

अनुमोदन करेंगे।

इस भगवत्सान्निध्यके अनुभवके अभ्यासको यदि आप अपना कर्तव्य समझकर खूब उत्साहके साथ करेंगे तो विश्वास रखिये आप थोड़े समयमें ही इसके प्रभावको जान लेंगे। और मैं अपनी क्षुद्र-प्रार्थनाओं एवं शुभ कामनाओंद्वारा भरसक आपकी सहायता करता रहूँगा। मैं अपने-आपको आपकी तथा आपके धार्मिक संघकी सेवामें अर्पित करता हूँ, क्योंकि मैं आपके धार्मिक संघका, विशेषकर आपका ही हूँ। भगवान्‌के नाते, सदा आपका—

(६)

.......आपने जो वस्तुएँ श्रीमती.......जीके हाथ मेरे लिये भेजी थीं, वे मुझे उनसे मिल गयी हैं। मैंने आपको एक छोटी-सी पुस्तक भेजी थी, आपको अवश्य मिल गयी होगी, पर आश्चर्य है कि उसके सम्बन्धमें आपने अपने विचारोंसे मुझे अभीतक अवगत नहीं किया। मैं आपसे अनुरोध करता हूँ कि आप अपनी इस वृद्धावस्थामें भगवान्‌को अपने सन्निकट अनुभव करनेमें उत्साहपूर्वक प्रवृत्त हों। यह विचारकर शिथिल मत होइये कि अब क्या होगा। देखिये, दिनभरका भूला-भटका प्राणी यदि सूर्यास्तके समय घरपर लौट आये तो उसे भूला-भटका नहीं समझा जाता। अत: आप भी निरुत्साह न हों।

सचमुच मैं यह कल्पना भी नहीं कर सकता कि एक धार्मिकजन भगवान्‌को अपने सन्निकट अनुभव किये बिना सन्तुष्ट हो सकता है। मैं अपनी बात कहता हूँ, जितना अधिक-से-अधिक मुझसे हो सकता है, मैं सब ओरसे

अपना मन बटोरकर एक भगवान्का ही सहवास अपनी अन्तरात्मामें करता हूँ। और इस प्रकार जब मैं भगवान्के साथ एक होता हूँ, भय स्वयं पलायन कर जाता है; परन्तु भगवान्से किंचिन्मात्र विछोह मेरे लिये असह्य हो उठता है।

इस प्रकार अन्तरात्मामें भगवान्का सहवास प्राप्त करनेका जो अभ्यास है, उसमें शरीरको किसी प्रकारका श्रम नहीं होता। सांसारिक सुख-भोगोंसे चाहे वे कितने भी निर्दोष एवं धर्मसम्मत हों—शरीरको समय-समयपर, नहीं-नहीं, बहुधा बचाते रहना चाहिये। क्योंकि भगवान् कभी नहीं चाहते कि जो पुरुष पूर्णरूपसे मुझमें अनुरक्त होनेकी आकांक्षा करता है, मेरे सिवा वह अन्य सुख-भोगोंमें रमण करनेकी इच्छा करे। क्या यह बात युक्तिसंगत नहीं है!

मेरे कहनेका यह तात्पर्य कदापि नहीं कि बाह्य संयमकी कठोर रस्सीसे हम अपने-आपको जकड़ लें। बल्कि हमें तो अभीष्ट यह है कि भगवान्की आराधना हम अपनी पवित्र इच्छासे ईमानदारीके साथ करें। और जब-जब हमारा मन भगवान्से अलग हो, इधर-उधर भटकने लगे तो हमें चाहिये कि बिना अपनेको किसी प्रकार विक्षुब्ध एवं चञ्चल किये शान्तिपूर्वक बड़े आरामसे उसको वापस खींचकर भगवान्में लगावें।

भगवान्में हमारी अनन्य श्रद्धा हो, इसके लिये आवश्यक है कि हम अन्य सब प्रकारकी चिन्ताओंको तिलाञ्जलि दे दें। बाहरी विशेष विधि-विधानोंको जिनमें मनुष्य प्रायः विवेकशून्य होकर प्रवृत्त होता है और जो चाहे देखनेमें

कितने ही अच्छे क्यों न हों, नमस्कार कर लें, क्योंकि आखिर ये बाहरी साधन ध्येयकी प्राप्तिके लिये ही तो किये जाते हैं और जब भगवत्सान्निध्यके अनुभवमें हम स्वयं भगवान्को ही प्राप्त कर लेते हैं, जो हमारे ध्येय हैं तो फिर इन साधनोंका आश्रय ग्रहण करनेकी हमें क्या आवश्यकता रह जाती है। अपने हृदयके अनेक भावोंद्वारा कभी भगवान्की स्तुति, आराधना एवं आराधनाकी अभिलाषा करते हुए और कभी उन्हींको आत्मसमर्पण तथा धन्यवाद देते हुए कृतज्ञतापूर्वक हम उन्हींकी सन्निधिमें रहें और उन्हींमें रमण करें।

पूर्वोक्त अभ्यासमें यदि स्वभावके कारण आपके सामने विघ्न उपस्थित हो तो हताश न हों, उसको अपने आत्मबलद्वारा नष्ट कर दें। आरम्भकालमें साधक प्राय: ऐसा समझता है कि वह कुछ नहीं कर सकता और इससे उसका केवल समय ही नष्ट हुआ। पर आप अवश्य दृढ़तापूर्वक इसमें अग्रसर हों और विघ्न-बाधाओंके उपस्थित होनेपर भी आप मृत्युपर्यन्त निरन्तर प्रयत्नशील रहनेका निश्चय करें। मैं आपके धार्मिक संघके, विशेषकर आपके लिये सदा प्रार्थना करता रहूँगा। भगवान्के नाते आपका—

(७)

सचमुच मुझे आपपर बड़ी दया आती है। यदि आप अपने कारोबारकी समस्त देखभाल श्रीमान्.......पर छोड़कर अपने शेष जीवनको भगवदाराधनामें लगावें तो यह अत्युत्तम बात होगी। भगवान् आपसे कोई बड़ी भारी वस्तु नहीं चाहते। वे परम दयामय आपसे केवल यही आशा रखते हैं कि चौबीस घंटेमें कभी-कभी आप उन्हें प्रेमपूर्वक स्मरण

करें, उनकी किञ्चित् पूजा करें और बीच-बीचमें उनकी कृपाके लिये प्रार्थना करते रहें तथा यदा-कदा अपने दुःख उन्हें निवेदन करें और जो-जो अनुग्रह वे दीनवत्सल कष्टके समय आपपर करते हैं, उनके लिये आप उन्हें कभी-कभी धन्यवाद देते रहें एवं उन्हींमें अधिक-से-अधिक सुख-शान्ति लाभ करें। मित्र-मण्डलीमें बैठे हुए अथवा भोजन करते समय आप अपने हृदयमें भगवदनुकम्पाका अनुभव करें। याद रखिये अल्पमात्रामें भी की हुई प्रेमपूर्वक भगवत्स्मृतिको भगवान् सदैव स्वीकार करते हैं। उन्हें जोर-जोरसे पुकारनेकी आवश्यकता नहीं। वे हमारे इतने अधिक निकट हैं कि जिसकी हम कल्पना भी नहीं कर सकते।

आवश्यक नहीं कि भगवत् सान्निध्यकी उपलब्धिके लिये हम सदा मन्दिरमें ही जायँ। हम अपने हृदयको ही समय-समयपर मन्दिर बनाकर उसमें स्थित भगवान्‌से विनय-विनम्र एवं प्रेमपूर्वक वार्तालाप कर सकते हैं। भगवान्‌के साथ इस प्रकार निःसंकोच भावसे वार्तालाप तो सभी कर सकते हैं। यह दूसरी बात है कि भगवत्प्रेमके अनुपातसे कोई उनसे अधिक घनिष्ठतासे बातचीत कर लेता है और कोई कम। वे अन्तर्यामी हमारे सामर्थ्यको भली प्रकार जानते हैं। प्रियवर! अब अविलम्ब उनकी शरण लीजिये। पतितपावन भगवान् हमसे बस एक ही बात चाहते हैं कि अति शीघ्र हम उनकी शरण ग्रहण करें और हतोत्साह न हों। देखिये इस संसारमें आपका और मेरा जीवन अब कुछ ही दिनोंका है; हम दोनों वृद्ध हो गये हैं, इसलिये हमें अब भगवान्‌को

ही अपने जीवन-मरणका साथी बनाना चाहिये। भगवान् हमारे साथ हों तो रोग-शोक भी हमारे लिये मधुर एवं सुखकर बन जाते हैं और उनके बिना महान्-से-महान् सुख हमें घोर यन्त्रणा ही पहुँचाता है। आइये, हम सदा-सर्वदा भगवान्‌की कृपा-दयाका अनुभव करें और उन्हें हृदयसे धन्यवाद दें। अस्तु,

भगवान्‌की उपासना तथा उनसे कृपा-याचना करनेका आप धीरे-धीरे अभ्यास डालें। कार्य करते हुए बीच-बीचमें, यदि हो सके तो प्रतिक्षण, भगवान्‌का अपने हृदयमें दर्शन करें। संकुचित होकर अपने-आपको विशेष विधि-विधानमें न जकड़ें वरं भगवान्‌में सर्वतोमुखी विश्वास रखते हुए विनय और प्रेमपूर्वक जीवन-यापन करें। मैं आपलोगोंके लिये भगवान्‌से प्रार्थना करता हूँ। मैं तो आपका एक दास ही हूँ। भगवान्‌के नाते, आपका—

(८)

(प्रार्थनाके समय मनकी एकाग्रता न होनेके सम्बन्धमें)

भाई! आपने मुझे कोई नयी बात नहीं बतलायी। अकेले आपका ही मन चंचल हो, ऐसी बात तो है नहीं। हम सभीका मन स्वभावसे ही अत्यन्त चंचल है, परंतु आत्मबल तो हमारे मन एवं ज्ञानेन्द्रियोंका स्वामी है, उसके द्वारा इनको काबूमें करके इन्हें भगवान्‌में लगाना चाहिये। भगवान् ही एकमात्र इनके अन्तिम विश्राम-स्थल हैं अर्थात् भगवान्‌में ही अन्ततोगत्वा इनका पर्यवसान होता है और उस समय मनुष्य कृतार्थ हो जाता है।

प्रारम्भिक अवस्थामें जब हम प्रार्थना करनेके लिये

एकान्तमें बैठते हैं तो हमारा मन हमारी इच्छा न रहनेपर भी प्राय: हमें विषय-भोगोंके चिन्तनमें लगा देता है। इसका कारण यह है कि मनको वशमें करनेका तो पहले हमने कभी कोई प्रयत्न किया नहीं, दूसरे, निरंकुश छोड़ देनेसे विषय-भोगोंमें रमण करनेकी इसको ऐसी बुरी लत पड़ गयी है, जिसका सहजमें छूटना कठिन हो जाता है।

इसका एक सरल और अमोघ उपाय तो मैं जानता हूँ। वह यह है कि नितान्त निष्कपट एवं दीनभावसे हम अपने समस्त अपराधोंको भगवान्‌के सम्मुख स्वीकार कर लें और सदैव विनम्र बने रहें। प्रार्थना करते समय शब्दाडम्बर रचा जाय, ऐसा मैं आपको कदापि परामर्श नहीं दे सकता; क्योंकि प्रार्थनाके समय जब हम वाग्विलासकी क्रीड़ामें फँसकर लम्बे-चौड़े स्तुति-पाठ अलापने लगते हैं तो हमारा मन बहुत अवसर पाकर चुपकेसे भाग निकलता है। प्रार्थनाके समय भगवान्‌के सम्मुख आप अपने-आपको ऐसा समझें कि मैं एक मूढ़ अथवा पक्षाघातसे ग्रस्त भिक्षुक हूँ। अत्यन्त दीन-हीन अवस्थामें एक परम दयालु धनवान्‌के द्वारपर पड़ा हूँ। उस समय आपका एक ही काम है कि अपने मनको सब ओरसे बटोरकर एकमात्र परमपिता भगवान्‌की सन्निधिके अनुभवमें लगा दें। फिर भी यदि कभी आपका मन पूर्वाभ्यासके कारण भगवान्‌से हटकर इधर-उधर भटकने लगे तो इसके लिये आप विशेष चिन्तित न हों, क्योंकि खेद और विषाद मनको अधीन करनेमें सहायक होनेकी अपेक्षा उसे और भी विक्षिप्त बना देते हैं। बल्कि आत्मबलके द्वारा अपने मनको फिरसे शान्तिपूर्वक वापस

खींचकर भगवान्‌में लगावें। इस प्रकार यदि आप लगातार दृढ़तापूर्वक अभ्यास करेंगे तो भगवान् निश्चय ही आपपर अनुग्रह करेंगे। प्रार्थनाकालमें मनको सुगमतापूर्वक वशमें तथा शान्त रखनेका एक और भी उपाय है, वह यह कि अन्य सब समय हम सावधान रहें। देखते रहें कि मन कहीं विषयोंका चिन्तन तो नहीं कर रहा है। जब कभी वह भटके, आप उसे पुचकारकर लौटावें और भगवत्सान्निध्यसे अनुभवमें जोड़ दें। इस प्रकार बार-बारके अभ्याससे जब भगवच्चिन्तन उत्तरोत्तर बढ़ेगा तो प्रार्थनाकालमें मनको शान्त रखनेमें आपको कुछ भी कठिनाई नहीं होगी। और यदि कभी किसी समय वह विषयोंका चिन्तन करने भी लगेगा तो वहाँसे उसे हटानेमें आपको कोई परिश्रम नहीं होगा। क्योंकि भगवत्सान्निध्यकी अनुभूतिमें जो परम सुख मिलता है, उसका वह रसास्वादन कुछ तो कर ही चुका होगा।

'भगवान् हमारे अत्यन्त सन्निकट हैं'—इस अनुभूतिकी बार-बार आवृत्तिमें जो लाभ और सुख आप प्राप्त करेंगे, इसके सम्बन्धमें मैं आपको अपने पूर्वके पत्रोंमें विस्तारसहित लिख चुका हूँ। हमें चाहिये कि इस अभ्यासमें अब हम विश्वास एवं गम्भीरतापूर्वक संलग्न हों और एक-दूसरेके प्रति सदा मंगलाकांक्षी रहें। इति। आपका—

(९)

प्रियवर! इस पत्रके साथ जो चिट्ठी है, उसे आप कृपया श्रीमती......जीको दे दें। यह चिट्ठी मैंने उनके पत्रके उत्तरमें लिखी है। सचमुच उनका हृदय बड़ा पवित्र और सरस है,

पर वे इतनी अधीर दीखती हैं, मानो भगवत्कृपाका अनुभव किये बिना ही आगे बढ़ना चाहती हों। आप ही सोचें, भला कोई पलक मारते ही धर्मात्मा हो जाता है। मैं उन्हें आपसे परामर्श लेनेका अनुरोध करता हूँ। प्रियवर! हमें चाहिये कि अपने सत्परामर्शद्वारा एक-दूसरेकी सहायता करें। इससे भी उत्तम बात यह होगी कि हमलोग संसारके सम्मुख एक आदर्श जीवन उपस्थित कर सकें। अपने आदर्श आचरणद्वारा ही हम अपना एवं दूसरोंका कल्याण कर सकते हैं, अन्यथा नहीं। उन बहिनके सम्बन्धमें समय-समयपर आप मुझे कृपया सूचित करते रहें कि वे आपके आदेशानुसार साधन-पथपर तत्परतापूर्वक चल रही हैं कि नहीं।

हमें इस बातको खूब समझ लेना चाहिये कि हमारे जीवनका एकमात्र ध्येय भगवत्प्रीति है। इसके अतिरिक्त और जो कुछ भी है, वह सब निरर्थक एवं मूर्खतापूर्ण है। देखिये आपको और मुझको दीक्षित हुए आज चालीस वर्षके लगभग हो गये। जिन भगवान्‌ने अपनी अनुकम्पासे ही हमें आश्रममें बुलाकर भजन-साधनका सुवर्ण-अवसर प्रदान किया, क्या हमने सचमुच जीवनके ये सुदीर्घ चालीस वर्ष उन्हींके प्रेम तथा सेवा-अर्चामें बिताये हैं? एक ओर भगवान्‌ने जो-जो महती कृपाएँ अबतक मुझपर की हैं, अब भी अनवरतरूपसे वे कर रहे हैं तथा दूसरी ओर मैंने उनका जो दुरुपयोग किया है और अपने ध्येयकी प्राप्तिमें जो स्वरूप-उन्नति की है यह सब देखकर मुझे बड़ी लज्जा एवं ग्लानि होती है।

भगवान्‌ने कृपापूर्वक ही जीवनके और थोड़ेसे दिन हमें

दिये हैं। बस, इतने स्वल्पकालमें ही हमें ऐसी तत्परता एवं आतुरतासे भगवान्में लगना है कि पिछली सारी त्रुटियोंकी पूर्ति हो जाय। भगवान् हमलोगोंको भूल जाते हों, ऐसी बात नहीं। वे तो वात्सल्यस्नेहसे विभोर हुए हमें आलिङ्गन करनेको सदैव तैयार हैं। हमें पूर्ण विश्वासके साथ उनकी ओर अग्रसर होना चाहिये। भगवत्प्रेमके लिये भगवान्के सिवा अन्य सब पदार्थोंका उदारतापूर्वक परित्याग कर देना ही उचित है। भगवत्प्रेमकी प्राप्तिके लिये जो कुछ भी हम कर सकें; वह थोड़ा ही है। सदा, सर्वदा और सर्वत्र हम भगवच्चिन्तन ही करें और भगवद्विश्वास हमारे जीवनका ध्रुवतारा बने। भगवान्में एकाङ्गी प्रेम होनेपर हम उनकी कृपारूपी अतुल धनराशिसे शीघ्र ही कृतकृत्य हो जायेंगे। हमें प्रत्यक्ष अनुभव होगा कि भगवत्कृपाद्वारा ही हम प्रत्येक शुभ कार्य सहजमें ही सम्पन्न कर सकते हैं। इसके बिना तो सिवा पापकर्मके हमसे और कुछ बनेगा ही नहीं।

मित्रवर! यह संसार केवल दुःखालय है। हम सबका जीवन आपत्ति-विपत्तिसे घिरा है। इन यन्त्रणाओंसे छूटनेका उपाय एकमात्र 'भगवच्छरणागति' है। अतएव प्रभुकी अभय शरण प्राप्त करनेके लिये हम सदा उनसे प्रार्थना करें। सच्ची प्रार्थना तो तब होती है, जब हम भगवान्को अपने सम्मुख समझें और ऐसा तभी हो सकता है, जब हम उनके चिन्तनमें अधिक-से-अधिक निरत रहें। भगवच्चिन्तन करनेकी स्वाभाविक अभिरुचि हमारे पवित्र आचरण और अलोलुप मनद्वारा ही सम्भव है। आप कह सकते हैं कि मैं बार-बार एक ही बातको सदा लिखा करता हूँ। ठीक है, मेरे लिये यही सबसे

उत्तम और सुगम मार्ग है; क्योंकि मैंने निरन्तर इसीका अनुसरण किया है और सुख-शान्ति प्राप्त की है। और इसलिये विश्वके सभी प्राणियोंको मैं इसी मार्गपर चलनेका परामर्श देता हूँ। इसके सिवा मेरे पास और कुछ है ही नहीं। संसारमें यदि कोई वस्तु प्रेम करनेयोग्य है तो वे हैं एक भगवान्। और उनसे प्रेम करनेके पहले उनका परिचय प्राप्त करना आवश्यक है; क्योंकि बिना जाने तो प्रेम होता नहीं। भाई! यह परिचय तब प्राप्त होता है, जब हम उनके चिन्तनमें अधिक-से-अधिक निमग्न होते हैं। इसके अनन्तर प्रेम होनेपर तो चिन्तन अपने-आप होता रहता है; क्योंकि हमारा हृदय अपने प्रेमास्पद प्रभुमें सदा निमग्न रहता है। उन्हें क्षण-भरके लिये भी नहीं भूलता। आशा है मेरी इस युक्तिपर विचारकर आप इसका सहर्ष समर्थन करेंगे। भगवान्‌के नाते आपका—

(१०)

......बड़े असमंजसके अनन्तर आज मैंने श्रीमान्‌को पत्र लिखा है, यह इसलिये कि आपका और श्रीमती.......जीका बड़ा अनुरोध रहा। कृपया आप इसपर उनका पता लिखकर डाकसे उन्हें भेज दें। मुझे आपके भगद्विश्वासको देखकर हार्दिक प्रसन्नता होती है। भगवान् इसे उत्तरोत्तर बढ़ाते रहें, यही मेरी उनसे प्रार्थना है। प्रियवर! भगवान्‌के समान परम हितैषी और दयालु मित्र दूसरा हमें कहाँ मिल सकता है? वे हमारे अभिन्न मित्र हैं, लोक और परलोकके सच्चे साथी हैं।

यदि श्रीमान्—अपने मित्रकी मृत्युमें अमङ्गल न देखकर

मङ्गल देखें तो उनको बहुत लाभ होगा। उनको चाहिये कि वे भगवान्में पूर्ण विश्वास रखें। उन्हें शीघ्र ही दूसरा ऐसा मित्र मिला देंगे जो परलोकगत मित्रकी अपेक्षा अधिक दृढ़ और सेवापरायण होगा। भगवान् उच्च प्रेरक ठहरे। वे अन्तर्यामी जैसा चाहते हैं, वैसी ही हम सबके हृदयमें प्रेरणा करते हैं। ऐसा लगता है जैसे श्रीमान्का अपने स्वर्गीय मित्रके साथ बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध था। मित्रवर! अपने मित्रसे हमें प्रेम करना ही चाहिये, परंतु साथ ही सिद्धान्ततः सदा सावधान रहना चाहिये कि कहीं हमारे भगवत्प्रेमपर कोई आँच न आने पावे।

आपको स्मरण होगा, मैंने आपको एक बार लिखा था कि सोते, जागते, कार्य करते तथा अन्य विनोद आदिके समय भी आप निरन्तर भगवच्चिन्तन करते रहें। भगवान् तो आपके सदा सन्निकट हैं, आप कभी भी उनसे विमुख न हों। वे परम कृपालु हमारा कभी भी साथ नहीं छोड़ना चाहते; फिर हम ही क्यों उन्हें पीठ दिखावें? आपसे एक मित्र मिलने आते हैं, उन्हें अकेले छोड़कर आप कहीं अन्यत्र जाना चाहें तो मेरे विचारमें आपको अवश्य ही कष्ट होगा। फिर भगवान्-जैसे परम सुहृद्की ही क्यों अवहेलना तथा उपेक्षा की जाय? भगवान्का क्षणभर भी विस्मरण न हो, उन्हें सदा स्मरण रखें, उनकी परम श्रद्धा एवं प्रेमसे पूजा करें तथा उन्हींके साथ मरें और जीयें। इसीमें सच्चे भगवद्भक्तकी महिमा है। सारांश यह है कि ऐसा जीवन बनानेके लिये ही तो हमने इस क्षेत्रमें प्रवेश किया था। यदि आज इसको भूल गये हों तो हमें फिरसे इसका स्मरण करना

चाहिये और ऐसा ही जीवन बनानेका व्रत लेना चाहिये। मैं अपनी शुभ कामनाओंद्वारा सदा आपकी सेवा करता रहूँगा। भगवान्‌के नाते आपका—

(११)

आप दु:खों एवं क्लेशोंसे छूट जायँ, इसके लिये मैं भगवान्‌से कदापि प्रार्थना नहीं करता। मैं तो उन दयामयसे यही हार्दिक प्रार्थना करता हूँ कि जितने समयतक वे आपको इन दु:खों एवं क्लेशोंमें रखें, आपको इन्हें सहन करनेकी शक्ति तथा धैर्यसे भी सम्पन्न बनावें। जिन भगवान्‌ने कृपावश आपके लिये दु:खोंका विधान रचा है, आप उन्हें अपने सन्निकट अनुभव कर सुखी हों। वे जब चाहेंगे, इन्हें दूर कर देंगे। सचमुच वे लोग भाग्यशाली हैं, जो दु:खमें भी भगवान्‌को अपने पास समझते हैं। आपको भी इसी प्रकार भगवान्‌को अपने अत्यन्त समीप समझते हुए प्रसन्नतापूर्वक दु:ख भोगनेका अभ्यास करना चाहिये और जितने कालतक वे आपको दु:खरूप विधानमें रखें, आप उनसे और कुछ न माँगकर, केवल उसे सहर्ष सहन करनेका ही बल माँगें। सांसारिक प्राणी यदि इन बातोंको न समझ पावें तो इसमें आश्चर्यकी कोई बात नहीं; क्योंकि वे देहाभिमानी होनेके कारण जड़ देहके सुख-दु:खसे प्रसन्न और विषण्ण होते रहते हैं। रोग एवं क्लेशोंको वे भगवान्‌की ओरसे आया हुआ मङ्गलविधान न मानकर शरीरके कष्टसे दु:खी हो नाना प्रकारकी यन्त्रणाओंको बाध्य होकर रो-रोकर भोगते हैं; परंतु जो लोग रोगको भगवान्‌का कृपाप्रसाद मानते हैं और समझते हैं कि यह सब तो हमारे अन्त:करणकी

शुद्धिके लिये ही प्रभुका रचा हुआ अनूठा ढंग है, वे भयानक रोगमें भी प्रायः अत्यन्त सुख एवं आश्वस्तताका अनुभव करते हैं।

कितना अच्छा होता यदि आप विश्वास कर सकते कि भगवान् किसी-न-किसी रूपमें हम सबके सदैव सन्निकट रहते हैं, स्वस्थ अवस्थाकी अपेक्षा रोगमें तो और भी विशेषरूपसे वे हमारे पास उपस्थित रहते हैं। भगवान्के अतिरिक्त आप किसी दूसरे चिकित्सकपर भरोसा न करें; क्योंकि मैं समझता हूँ, आपके रोगका इलाज उन्होंने अपने ही हाथमें ले रखा है। भगवान्में पूर्ण विश्वास कीजिये और देखिये कि इससे आपके स्वास्थ्यपर कितना अच्छा प्रभाव पड़ता है। भगवान्को छोड़कर केवल औषध आदिमें विश्वास रखनेसे तो सुधारकी अपेक्षा हानि ही होती है।

दूसरे रोगको दूर करनेके जितने भी उपाय आप करते हैं, उन सबकी सफलता भी तो भगवान्की इच्छापर निर्भर करती है। भगवान् स्वयं ही जब हमारे लिये दुःखका विधान रचते हैं तो फिर भाई! उनको छोड़कर उसे दूर करनेकी और किसकी सामर्थ्य है। सचमुच हमारे अन्तःकरणके मलको दूर करनेके लिये ही भगवान् हमें शारीरिक रोग प्रदान करते हैं। शरीर और अन्तःकरणके रोगोंका नाश करनेवाले एकमात्र भगवान्रूपी वैद्यकी शरण ग्रहणकर सुख-शान्ति लाभ करना चाहिये।

भगवान् आपको जैसी भी स्थितिमें रखें उसीमें आपको संतुष्ट रहना चाहिये। आप मुझे कितना भी अधिक सुखी समझें, पर मैं आपकी इस रुग्णावस्थासे ईर्ष्या ही करता।

क्योंकि दुःखके समय भगवान्‌के दर्शन विशेषरूपमें होते हैं। भाई! भगवान् साथ हों तो भारी-से-भारी दुःख-क्लेशको भी भोगते हुए जो आनन्द प्राप्त होता है, उसके सामने स्वर्गका सुख कुछ भी महत्त्व नहीं रखता। और भगवान्‌के बिना महान्-से-महान् सुख भी नारकीय यन्त्रणा ही देनेवाला होता है। भगवान्‌के लिये जो कुछ भी दुःख भोगना पड़े, उसमें एक विलक्षण सुखानुभूति होती है।

इस नश्वर शरीरको त्यागकर कुछ ही कालमें मैं अब भगवत्-धामको प्रस्थान करूँगा। अटूट श्रद्धाके कारण जीवनकालमें ही अब मेरी ऐसी अवस्था हो गयी है कि कभी-कभी भगवान्‌के दर्शन मुझे अपरोक्ष रूपमें होने लगते हैं। उस समय यह प्रश्न ही नहीं उठता कि वह केवल मेरी मान्यतामात्र ही है। भाई! यह सब भगवान्‌में श्रद्धाके बढ़ानेका ही फल है कि जो आज भगवान् मेरे जीने-मरनेके साथी बन गये हैं।

आप सदा अपने-आपको भगवान्‌के अत्यन्त निकट समझें। रुग्णावस्थामें यह अनुभूति आपके जीवनका अवलम्बन और सुखका हेतु बनेगी। मैं भगवान्‌से उन्मुक्त हृदयसे प्रार्थना करूँगा कि 'वे परम दयालु आपको अपने चरणकमलोंकी शरणमें ले लें; यही मेरी सेवा है।' आपका—

(१२)

बन्धुवर! भगवान् हमारे अत्यन्त सन्निकट हैं, इस तथ्यका पूर्ण अनुभव हो जानेपर तो रोग-शोक रहते ही नहीं। भगवान् कितने दयालु हैं—भाई! उनकी अहैतुकी अनुकम्पाकी ओर तो ध्यान दीजिये। सचमुच वे हमपर अनुग्रह करनेके

लिये ही दु:खका विधान रचते हैं, क्योंकि इससे हमारे मलिन अन्त:करणकी शुद्धि होती है। और जब हमारा अन्त:करण शुद्ध हो जाता है, हम अविलम्ब भगवदभिमुख हो जाते हैं, उन्हें अपने पास ही अनुभव करते हैं। इस अनुभूतिमें कितना सुख, कितना आनन्द है, कहा नहीं जा सकता।

उत्साह रखिये, निराश होनेकी तो कोई बात ही नहीं। भाई! भगवान् तो आपके सामने खड़े हैं, उन्हें अपने कष्ट निवेदन कीजिये, प्रार्थना कीजिये। वे आपको इन्हें सहन करनेकी शक्ति देंगे। कितनी सुन्दर बात हो; यदि आप भगवान्‌की स्मृतिमें ही आठों पहर तल्लीन रहें, उन्हें क्षणमात्र भी न भूलें। मैं मानता हूँ, आपका शरीर दुर्बल हो गया है, पर क्या बिस्तरपर पड़े-पड़े ही आप मनसे भगवान्‌की आराधना नहीं कर सकते? भगवान्‌को आत्मसमर्पण कीजिये; उनसे कहिये—'हे नाथ! मैं जैसा भी हूँ, आखिर हूँ तो आपका ही; मुझे अपने चरणकमलोंमें शरण दीजिये।' क्षुधा तथा व्यथासे संतप्त होकर अबोध शिशु जैसे एकमात्र अपनी माँको ही प्रेम तथा दीन-भावसे पुकारता है, वैसे ही आप भी भगवान्‌को अपने करुणक्रन्दनद्वारा पुकारें। जैसे माँ बच्चेको रोते देख उतावली हो उसके पास दौड़ी चली आती है, ठीक वैसे ही, नहीं-नहीं इससे भी कहीं अधिक उतावलीके साथ करुणावरुणालय भगवान् आपके पास खिंचे चले आयेंगे और जिसमें आपका यथार्थ हित होगा वे वही उपाय करेंगे। अस्तु!

हमें भगवान् अपनी ओर विविध प्रकारसे खींचते हैं।

कभी-कभी वे हमारी दृष्टिसे ओझल हो जाते हैं, यह इसलिये कि हमारी उनमें जो श्रद्धा है, उसको विकसित होनेका अवसर मिले। क्योंकि भगवान्‌के विरहमें संताप और व्यथाके बढ़ जानेपर, एकमात्र भगवत्-श्रद्धा ही हमें जीवित रखती है। वह हमारे विश्वास-दीपको बुझने नहीं देती। कठिन-से-कठिन समयपर वह हमें प्रकाश प्रदान कर निराश होनेसे बचाती है।

भगवान् किस ढंगसे मेरा शरीरान्त करेंगे, यह मैं नहीं कह सकता और न मुझे इसकी कोई चिन्ता ही है। मैं अब प्रत्येक अवस्थामें सदा प्रसन्न रहता हूँ। देखिये, समस्त संसारमें त्रिताप व्याप्त हैं। कायिक, मानसिक और दैवी तापसे सभी त्रस्त और पीड़ित हो रहे हैं। इससे बचनेका एक ही स्वर्ण उपाय भगवच्छरणागति है। मेरी ओर देखिये, जबसे मैं भगवच्छरणमें आया हूँ कितना प्रसन्न रहता हूँ। मुझमें त्रुटियाँ हैं और इनके कारण मेरा शासन भी आवश्यक है, परन्तु भगवान्‌की कृपा-दयाकी अनूठी झाँकीने मेरी समस्त चिन्ताओंको दूर भगा दिया है और अब मैं सदा आनन्दमग्न रहता हूँ।

मैं यदि स्वतन्त्र होता, तो आपके कष्टको बहुत कुछ अपने ऊपर ले लेता; परंतु मेरी दशा तो ऐसी हो गयी है कि भगवान्‌से क्षणभरका भी वियोग मेरे लिये असह्य हो उठता है। यदि यह मेरी कमजोरी कही जाय तो मुझमें यह प्रचुरमात्रामें है। भगवत्-श्रद्धाने मेरी दृढ़ धारणा बना दी है कि जबतक भगवान्‌से हम स्वयं मुख नहीं मोड़ते, वे हमें कदापि नहीं त्याग सकते। बन्धुवर! सुखागार भगवान्‌से हम

कहीं विमुख न हो जायँ, इसके लिये हम सदा सतर्क रहेंगे। उनसे सदा चिपटे रहें, उन्हींकी छत्रच्छायामें सदा जीवें और प्राणविसर्जन करें। हम सदा एक-दूसरेके लिये मङ्गलकामना करते रहें। भगवान्‌के नाते आपका—

(१३)

......आप बहुत दिनोंसे रोगके कारण कष्ट पा रहे हैं, आपके प्रति मेरे हृदयमें गहरी संवेदना है, किंतु जब मैं विचार करता हूँ कि स्वयं भगवान्‌ने आपके लिये इस रोगका विधान रचकर आपके प्रति अपने स्नेहका परिचय दिया है तो मेरी संवेदना शान्ति तथा कृतज्ञता आदि सुन्दर भावनाओंमें परिणत हो जाती है। आप भी यदि मेरे दृष्टिकोणसे देखें तो रोग आदि क्लेशोंको आप सुगमतापूर्वक सहन कर सकेंगे। रोगके कारण आपकी इस समय जैसी अवस्था है, उसको देखते हुए मैं तो आपको यही परामर्श दूँगा कि आप सब प्रकारकी चिकित्सा एकदम बंदकर पूर्णभावेन भगवच्चरणारविन्दोंमें आत्मसमर्पण कर दें। आपके रोगको दूर करनेके पहले सम्भवत: भगवान् यही देखते हों कि आप कब उनके प्रति आत्मसमर्पण करते हैं और आपका उनमें पूर्ण विश्वास होता है। भाई! आप ही सोचें अबतक आपने कितनी सावधानीसे ओषधि आदिका सेवन किया है; परंतु उसका परिणाम क्या हुआ? रोगका नाश हुआ हो, ऐसी बात नहीं; बल्कि वह उत्तरोत्तर बढ़ता ही जा रहा है। अपने कल्याणके लिये ही आपको चाहिये कि अपने-आपको भगवान्‌के करकमलोंमें सौंप दें और जो कुछ भी माँगना हो उन्हींसे माँगें।

इससे पूर्वके पत्रमें मैंने आपको लिखा था कि भगवान् कभी-कभी हमारे मानसिक रोगोंकी निवृत्तिके लिये ही हमें शारीरिक रोग प्रदान करते हैं। कृपया आप साहससे काम लें और वर्तमान परिस्थितिसे लाभ उठावें। भगवान्‌से रोग आदि क्लेशोंसे मुक्ति न माँगकर जितनी देरतक वे चाहें उनके प्रेम और प्रसन्नताके लिये ही उनको दृढ़तापूर्वक सहन करनेकी शक्ति माँगें।

मैं मानता हूँ; ऐसी प्रार्थनाएँ मनुष्यकी प्रकृतिके कुछ विरुद्ध तो अवश्य पड़ती है, परंतु भगवान् इनका हार्दिक स्वागत करते हैं। भगवत्प्रेमी जनोंके लिये तो यह सुधाके समान है। प्रेम कष्टको मधुर बनाता है। भगवद्भक्त तो भगवान्‌के लिये ही सब प्रकारके कष्टोंको साहस और प्रसन्नतापूर्वक सहन करता है। आप भी ऐसा आदर्श जीवन बनावें, यह मेरा आपसे प्रेमपूर्वक अनुरोध है। हमारे शारीरिक तथा मानसिक समस्त रोगोंके चिकित्सक एकमात्र भगवान् हैं। आप उन्हींमें सुख लाभ करें। दीन-दु:खियोंके वे माता-पिता हैं, उनकी सहायताके लिये सदैव उत्सुक रहते हैं। उनका हमारे प्रति कितना असीम वात्सल्य है, इसका हम अनुमान भी नहीं लगा सकते। इसलिये भगवान्‌को छोड़कर आप कहीं भी सुखकी आशा न करें, उन्हींको अपने प्रेमका केन्द्र बनावें। मुझे विश्वास है, उनका कृपाप्रसाद आपको शीघ्र ही प्राप्त होगा। मैं अपनी क्षुद्र प्रार्थनाओंद्वारा सदा आपकी सेवा करता रहूँगा। भगवान्‌के नाते आपका—

(१४)

..........भगवान्‌ने आपके भावनानुसार आपके रोगको कुछ शान्त कर दिया है, उनकी इस अनुकम्पाके लिये मैं कृतज्ञता प्रकट करता हूँ। मेरी स्वयं कई बार मरणासन्न अवस्था हुई है; किंतु उस अवस्थामें मुझे एक अभूतपूर्व आनन्दका अनुभव हुआ। अतः भगवान्‌से रोगमुक्त होनेके लिये मैंने कभी किसी समय भी प्रार्थना नहीं की। जब कभी माँगा भी तो यही माँगा कि वे प्रभु मुझे उन सब क्लेशोंको दीनता, धीरता और प्रसन्नतापूर्वक सहन करनेकी शक्ति प्रदान करें। सचमुच वे क्षण भी कितने मधुर एवं प्रीतिवर्धक होते हैं। जब हम अपने प्राणाराम भगवान्‌की सन्निधिमें उन्हींको निहारते हुए क्लेशरूपी महाप्रसादका उपभोग करते हैं। अपने परम प्रियतमकी गोदमें लेटे-लेटे दुःख-व्याधिका भोगना कैसा अनुपम स्वर्गीय सुखभोग है। उस मङ्गलमयी और आनन्दमयी स्थितिका वर्णन भला कौन कर सकता है? इसलिये मैं आपसे कहता हूँ, भारी-से-भारी दुःख भी क्यों न हो; हमें उसका प्रेमपूर्वक अभिनन्दन करना चाहिये। यदि किसीको इस पाञ्चभौतिक शरीरमें ही उस अनिर्वचनीय सुखको प्राप्त करनेकी अभिलाषा हो तो उसे चाहिये कि भगवान्‌को अपने सन्निकट समझते हुए उनसे विनम्र, निःसंकोच एवं प्रेमपूर्वक वार्तालाप करनेका अभ्यास डाले। अपने हृदयको देवालय समझकर उसमें स्थित आनन्दकन्द भगवान्‌की अहोरात्र उपासना करे और सदा सतर्क रहे कि कहीं मन भगवान्‌को छोड़कर अन्यत्र न भटक जाय। हम सबको इस बातमें सदैव सचेत रहना चाहिये कि कहीं हम

कोई ऐसा काम न कर बैठें, ऐसा शब्द न बोल उठें अथवा भूलसे भी किसी ऐसी बातका चिन्तन न कर लें जिससे जगत्स्रष्टा भगवान् अप्रसन्न हों। मित्रवर! जब हमारा मन निरन्तर भगवच्चिन्तनमें संलग्न रहेगा तो क्लेशादि हमारी चिन्ताके विषय न बनकर हमारे सुख-शान्तिके हेतु बनेंगे।

मैं जानता हूँ, इस अवस्थाको प्राप्त करनेमें हमें आरम्भमें कष्टका अनुभव होता है; किंतु भगवान्‌की महती कृपासे हम उसको सहजमें ही पार कर लेते हैं। कौन-सा भला ऐसा कार्य है, जिसे हम भगवत्कृपाद्वारा सम्पन्न नहीं कर सकते? और संसारमें कौन-सा ऐसा व्यक्ति होगा, जिसे भगवत्कृपा प्राप्त करनेका अधिकार न हो? मेरे कहनेका तात्पर्य यह है कि भगवान् और उनकी अप्रतिम कृपाको प्राप्त करनेका सभीको समानरूपसे अधिकार है। उसमें कोई भी परिस्थिति बाधक नहीं हो सकती। सरल और निष्कपट भावसे जो कोई भी भगवान्‌से इसकी याचना करता है, भगवान् इससे उसे कदापि वञ्चित नहीं करते। भगवान्‌का द्वार खटखटाइये, लगातार खटखटाते रहिये; मैं आपको आश्वासन देता हूँ कि उचित समयपर वे आपके लिये अपने द्वारको उन्मुक्त कर देंगे और जिन-जिन वस्तुओंकी आपके मनमें अभिलाषा रही है, उन सबसे वे आपको तत्क्षण सम्पन्न कर देंगे। भगवान्‌से आपके लिये मैं प्रार्थना करता हूँ, आप भी मेरे लिये करें। मुझे ऐसा लगता है कि भगवान् अब शीघ्र ही मुझे अपनी गोदमें उठा लेंगे।

(१५)

भाई! भगवान्‌के प्रत्येक विधानमें हमारा मङ्गल भरा है। हमें कब और किस समय कौन-सी वस्तु चाहिये, इसको वे अन्तर्यामी खूब समझते हैं। वे परम पिता हमसे कितना अपार स्नेह करते हैं, इस बातको यदि हम समझ पायें तो सुख और दु:ख दोनों ही हमारे लिये समान हो जायँ; क्योंकि ये दोनों ही हमारे परम सुहृद् भगवान्‌के द्वारा रचित हैं और हैं हमारे कल्याणके लिये ही। अपने परम शुभचिन्तक भगवान्‌के मङ्गलमय विधानमें हमें सदा प्रसन्न रहना चाहिये। भयानक-से-भयानक रोग हमें तभी अस्थिर और शोकातुर बनाता है, जब हम उसको विभ्रमग्रस्त मनसे देखते हैं, किंतु शुद्ध एवं शुद्धायुक्त हृदयसे जब हम उसको स्नेहार्द्र भगवान्‌के द्वारा प्रेषित अनुभव करते हैं तो उससे होनेवाली समस्त शारीरिक तथा मानसिक व्यथाका स्वत: लोप हो जाता है और उसके स्थानपर हमें प्राप्त होता है एक अलौकिक मूक आश्वासन।

हमारा समस्त जीवन-व्यापार भगवत्प्राप्तिके लिये होना चाहिये। भगवान्‌में जितना-जितना हम प्रवेश करते हैं, उतना ही अधिक उनको जाननेकी उत्सुकता बढ़ती है। अपने प्रेमास्पदके परिचयके अनुपातसे ही उसके प्रति हमारा प्रेम होता है। जितना अधिक हमें उसकी महिमाका ज्ञान होता है उतनी ही महान् एवं गम्भीर हमारी भक्ति उसके प्रति बढ़ती है। सर्वशक्तिव्यापक भगवान्‌की असीम महिमाका जिस-किसीको भी अनुभव हो जाता है, वह संसारकी आधि-व्याधि और विषमताको सहजमें ही उल्लंघन कर जाता

है। सुख और दुःख दोनोंमें उसकी समान स्थिति हो जाती है; क्योंकि भगवान् और उनकी कृपाके अतिरिक्त उसके अनुभवमें कोई दूसरी वस्तु आती ही नहीं। यही भगवत्प्रेमकी महिमा है।

भगवान् हमारे योगक्षेमको वहन करते हैं। हमारी कितनी ही सांसारिक कामनाओंकी उन्होंने पूर्ति की है तथा आगे भी करेंगे। ये कामनाएँ लोकदृष्टिसे चाहे ऊँचे-से-ऊँचा स्थान रखती हों, पर भाई! इनकी पूर्तिमात्रसे हमें कभी संतुष्ट नहीं होना चाहिये, बल्कि ऐसी कामनाएँ तो हमारे विशुद्ध प्रेमको दूषित ही करती हैं। भगवद्भक्त योगक्षेमकी चिन्ता नहीं करता, दुःख-सुखकी उसे परवा नहीं होती। वह तो मन, चित्त और बुद्धि भगवान्‌को समर्पितकर एकमात्र उन्हींकी मनोहर शोभाको निहारता और उन्हींकी महिमाका गान करता रहता है। भाई! हमारी अडिग विशुद्ध श्रद्धा ही हमें भगवत्प्राप्ति करा सकती है। भगवान्‌से सांसारिक वैभवकी याचना करनेसे जो विषय प्राप्त होते हैं, वे तो हमें उनसे बहुत दूर ले जाते हैं। और हमारा जीवन अस्त-व्यस्त हो जाता है। इसलिये मैं कहता हूँ कि हमको एकमात्र विशुद्ध निष्काम श्रद्धाद्वारा ही भगवान्‌की ओर अग्रसर होना चाहिये। उनको कहीं बाह्य जगत्‌में ढूँढ़नेकी आवश्यकता नहीं, वे तो हमारे हृदयमें सदा विराज रहे हैं। बाह्य जगत्‌की क्षणभंगुर और विनाशशील वस्तुओंमें भोग-बुद्धि करनेसे तो भगवान् अप्रसन्न ही होते हैं और अपनी इस मूढ़ताके कारण हम बड़े भारी अपराधी सिद्ध होते हैं। विषयोंसे मन हटानेपर और उसको अन्तर्मुख करनेपर ही हमें भगवत्प्रेमकी उपलब्धि

होती है।

अपने मनको समस्त विषय-भोगोंकी कामनासे रिक्तकर हमें एकमात्र भगवत्परायण हो जाना चाहिये। मनमें जो भी विषय-कामना हो, उसे हम भगवान्‌को निवेदन कर दें और एकमात्र उन्हींकी प्राप्तिके लिये उनसे अनुनय-विनय करें। अपनी शक्तिभर प्रयत्न करनेपर भगवान्‌की कृपासे हमें वह मङ्गलमय स्थिति प्राप्त होगी, जिसकी हमें अत्यन्त लालसा है! भगवान्‌ने दयाद्रवित हो आपको आश्वासन दिया है, उसके लिये मैं किन शब्दोंमें उनका धन्यवाद करूँ! आशा है, भगवान् मुझे अनुकम्पापूर्वक कुछ ही दिनोंमें अपने पास बुला लेंगे। हम सदा एक-दूसरेके प्रति मङ्गलाकांक्षी रहें।* भगवान्‌के नाते आपका—

ॐ शान्तिः! शान्तिः! शान्तिः!

---

* इस पत्रको लिखनेके दो दिनों पश्चात् भाई लारेंस बीमार हुए और एक सप्ताहमें ही उनका शरीर शान्त हो गया।